...ारवि...द्र-प्रद्योतन-भट्टाचार्येण
...ाभ-...ेण विरचिता

...ीरभद्रदेवचम्पूः

VIRABHADRADEVACHAMPU

व्याख्याकारोऽनुवादकश्च

डा॰ सुद्युम्न आचार्यः

सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्येण
पद्मनाभ-मिश्रेण विरचिता

वीरभद्रदेवचम्पूः

VIRABHADRADEVACHAMPU

व्याख्याकारोऽनुवादकश्च

डा० सुद्युम्न आचार्यः

व्याकरणाचार्यः, M.A. (अष्टस्वर्णपदकविजेता) D. Phil.
रीडर-स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
मु.म. टाउन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
जि. बलिया (उ.प्र.)

विद्वन्मूर्धन्य सम्माननीय अभिराज डा. राजेन्द्र मिश्र

की

शुभाशंसा

डा. सुद्युम्न आचार्य नई पीढ़ी के संस्कृत अध्येताओं में स्वयं को शीर्षस्थ सिद्ध कर रहे हैं, अपनी अहर्निश साहित्य साधना तथा बहुमूल्य प्रकाशनों से। पिछले दशक में उनके चिन्तन-प्रवण शोध निबन्धों के दो संग्रहों 'रोचन्तां शब्दभूमय, तथा 'राजन्तां दर्शनांशवः' ने विदग्ध जनों को उनकी ओर आकृष्ट किया। इन निबन्धों में लेखक ने जिस परिहास-पेशल शैली में शब्दानुशासन की गूढ़ अभिव्यक्तियों को साहित्यमुखेन समीक्षित किया है, उससे उसकी मौलिक प्रतिभा का सहज मूल्यांकन किया जा सकता है। व्याकरण एवं नवरस साहित्य का वह संगम 'परिहासविजल्पन' मात्र नहीं है, प्रत्युत उसमें प्रभूत चिन्तन सामग्री तथा निगूहित सत्य भी है।

सुद्युम्नजी अब अपनी सारस्वत यात्रा में टेढ़ी मेढ़ी पगडण्डियों को छोड़ प्रवर-जनोपभोग्य राजपथ पर आ गये है। इधर उनका ध्यान केन्द्रित हुआ है, बघेलखण्ड-धरित्री की अज्ञात, अप्रकाशित श्रेष्ठ सारस्वत-सम्पदा पर। इस क्षेत्र का रीवा राजवंश मुगल सल्तनत में भी उन्नति की पराकाष्ठा पर रहा है। यहां के शासक, धीर-वीर, साहित्य संगीत कला के महान् संरक्षक तथा प्रजावत्सल रहे हैं। शहंशाह अकबर महान् गान्धर्व-विद्योपासक तानसेन को यहीं से ले गया था। अभी भी यहां के ऐतिहासिक ग्रंथागार में ऐसी असंख्य पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं जो या तो अन्यत्र नहीं ही हैं, या फिर उतनी 'सांगोपाङ्ग' नहीं है जितनी कि रीवा ग्रंथागार की ।

अभी कुछ दिन पूर्व मैंने डा. सुद्युम्न द्वारा टीकित, अनूदित एवं व्याख्यात 'वीरभानूदय-महाकाव्य' के कुछ अंश देखे थे। यह महाकाव्य रीवा के बघेलवंशी भूपति वीरभानु की जीवन यात्रा पर आधारित है।

इसी क्रम में अब सुधी विद्वान् ने श्री पद्मनाभ मिश्र प्रणीत वीरभद्र देव चम्पू का प्रकाशन अपने हाथ में लिया है। निश्चय ही सुद्युम्न जी का यह ज्ञानाध्वर देववाणी पक्षधरों के लिए मंगलमय सिद्ध होगा। क्योंकि संस्कृत में

ऐतिहासिक चम्पूकाव्यों की संख्या अत्यल्प है। जो हैं भी, उनमें सौशब्द्य तथा नानाविध चमत्कार सृष्टि ही अधिक है, ऐतिह्य तत्व नहीं के बराबर है! महामहिम पण्डितराज जगन्नाथ जैसा अप्रतिम प्रतिभा का धनी व्यक्ति भी 'आसफ विलासं' में नवाब आसफखान के जीवन की अथवा तत्कालीन मुगल सल्तनत से सम्बद्ध राजनयिक घटनाओं की कोई सूचना नहीं दे सका। 'आसफ-विलास' चम्पूसर्जना से 'पिण्ड छुड़ा लेने' जैसी कृति प्रतीत होती है।

परन्तु वीरभद्रदेव-चम्पू न केवल इसका अपवाद है अपितु ऐतिहासिक काव्य परम्परा रूपी नक्षत्र माला का मध्यमणि है। इस चम्पू में बघेलवंश के क्रमिक, प्रात्ययिक ऐतिह्य के साथ ही साथ तद्युगीन भारतीय राजनैतिक स्थिति का एक प्रत्यक्ष दस्तावेज मौजूद है।

वीरभद्रदेवचम्पू का रचनाकाल १६३४ वि. सं. (सन् १५७७ ई.) है। इसका मूल लेख उदयपुर राजस्थान के सरस्वती भण्डार में सुरक्षित है। इस चम्पू का एक लघु अंश (मूल मात्र) १६५२ ई. में डा. यतीन्द्र विमल चौधरी ने प्राच्य वाणी कलकत्ता से प्रकाशित किया था। परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ का उपादेय संस्करण डा. सुद्युम्न आचार्य द्वारा प्रथम बार प्रकाशित किया जा रहा है।

ग्रन्थ प्रकाशन स्वयं में घात-प्रतिघात बहुल एक लघुजीवन होता है। लोग प्रकाशित ग्रंथ का कलेवर तथा प्रतिपाद्य की शुद्धि अशुद्धि की संवादी विसंवादी चर्चा मात्र से अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। परन्तु लेखक अथवा व्याख्याकार ग्रन्थ को नवजात शिशु की तरह संजोता है। मूलमात्र का अन्वय, अनुवाद, व्याख्या, टिप्पणी तथा आमुख परिशिष्ट आदि का संयोजन एक लम्बी प्रक्रिया है। विशेष कठिनाई तब होती है जब कोई विद्वान् किसी ग्रन्थ की व्याख्या प्रथम बार कर रहा होता है। परवर्ती व्याख्याकारों के लिए तो एक सुदृढ़ आधार भूमि मिल जाती है, क्योंकि वे बने बनाये यात्रा पथ पर चलते हैं। परन्तु जो व्यक्ति प्रथमतया कार्य प्रारंभ करता है, वही वन्दनीय होता है। महाकवि बाणभट्ट ने कहा था-

उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्या कवीश्वराः॥

कवितल्लज पद्मनाभ मिश्र ऐसे ही वन्दनीय कवीश्वर हैं। इनका गद्य बाणभट्ट के ही गद्यादर्श का अनुकरण करता है, अभिप्रायों की नवीनता, अग्राम्य जाति, अक्लिष्ट श्लेष, परिस्फुट रसचर्वणा तथा विकटाक्षर बन्धों के कारण। ऐसे उत्कृष्ट

ग्रन्थ का सुद्युम्नाचार्य ने प्रथम बार हिन्दी रूपान्तर तथा व्याख्या की है
यह उनका महान् सारस्वत साहस है! मैं एतदर्थ युवा अध्येता को भूरिशः साधुवाद देता हूं।

इस अप्रकाशित चम्पू ग्रंथ का सांगोपांग मूल लेख प्राप्त करने के लिए व्याख्याकार ने नेशनल लाइब्रेरीं कलकत्ता एवं बान्धव गढ़ दुर्ग की श्रम एवं व्यय-साध्य कठिन यात्राएं की हैं। इन यात्राओं का उल्लेख आवश्यक है, डा. सुद्युम्न की अधीतिप्रियता को निर्दिष्ट करने के लिए और यह निर्देश नई पीढ़ी के उन आचार्यों के लिये प्रेरणा का स्रोत बन सकता है जो वेतन प्राप्ति को ही जीवन का अन्तिम साध्य माने बैठे हैं। आज आवश्यकता है नई पीढ़ी को उस मनोवृत्ति की जो कभी म. म. हरप्रसाद शास्त्री या राजेन्द्रलाल मित्र की थी। हमें प्रसन्नता है कि डा. सुद्युम्न आचार्य जैसे प्रतिभापटिष्ठ विद्वान् उसी मनोवृत्ति के हैं। यह देववाणी की मंगलमयी 'आयति' का शुभ संकेत है।

ग्रन्थ के अन्तिम पन्ने पर दी गई सूचना के अनुसार श्री नन्दकिशोर शर्मा पालीवाल ने प्राचीन पाण्डुलिपि के आधार पर प्रस्तुत चम्पू काव्य की नई प्रतिलिपि वि. सं. १९९१ (श्रावण शुक्ल त्रयोदशी बुधवासर) उदयपुर नरेश महाराणा भूपाल सिंह के सरस्वती भण्डार कार्यालय में तैयार की। डा. आचार्य ने इसी प्रतिलिपि को अपना मुख्य आधार बनाया है। निश्चय ही इस सद्ग्रंथ के प्रकाशन से संस्कृत जगत् गौरवान्वित होगा। मेरी हार्दिक शुभाशंसा है कि इस सारस्वत साधना से सुद्युम्न जी को विद्वज्जनोचित मान यश एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हो तथा वह चिरायु हों ।

सस्नेह

राजेन्द्र मिश्र
आचार्य एवम् अध्यक्ष
संस्कृत तथा भोटी विभाग
हिमांचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला-५

❑

अनुवादक की भूमिका

संस्कृत में चम्पू-काव्य की परम्परा

संस्कृत साहित्य में 'चम्पू' शब्द का प्रयोग अधिक प्राचीन नहीं है। वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् आदि में इसका उल्लेख देखने में नहीं आता। पर इस शब्द का जो अर्थ है, उसके निदर्शन प्राचीन साहित्य में भी अवश्य प्राप्त होते हैं। साहित्य दर्पण में गद्य तथा पद्य दोनों विधाओं में प्रस्तुत काव्य रचना को 'चम्पू' कहा गया है[१]। केनोपनिषद् में अत्यन्त लालित्यपूर्ण रीति से इन दोनों प्रकारों का उपयोग करते हुए ईश्वर को इन्द्रियों से परे सिद्ध किया गया है[२]। अतः प्रस्तुत लक्षण के अनुसार तो यह भी चम्पू है।

फिर भी लौकिक संस्कृत साहित्य में प्रायः पद्य में रचनाएं की जाती रहीं। कुछ कवि गद्य में भी काव्य लिखते रहे। पर इन दोनों शैलियों में मिलाकर लिखने की प्रवृत्ति तो बहुत बाद में जागृत हुई। अतः लक्षणकारों को इसके लिए अलग नाम देने की आवश्यकता भी बहुत समय पश्चात् महसूस की गई।

यों तो अभिलेखों में चम्पू काव्य के प्रयोग देखे गये हैं। पर चम्पू की परिभाषा में पूरी तरह सही उतरने वाला सबसे पहला काव्य नलचम्पू है, जो कि त्रिविक्रम भट्ट द्वारा दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में रचा गया। तब से १५वीं शताब्दी तक छिटपुट रूप से ऐसे काव्य लिखे जाते रहे, जिनमें से अधिकांश दक्षिण भारतीय कवियों द्वारा रचे गये ।

१५वीं शताब्दी के पश्चात् सबसे पहला तथा सबसे सुन्दर, सशक्त लेखन 'वीरभद्रदेव-चम्पू' के रूप में हम पाते हैं। यह उत्तर भारत के कवि के द्वारा रचा गया था तथा इसमें समकालीन सच्चे इतिहास को काव्य का विषय बनाया गया था। चम्पू काव्य की अधिकांश रचनाएँ इस रचना के पश्चात् हुईं।

---

१ गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते - साहित्य दर्पण ६.३३६

२ गद्य का प्रयोग - न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति, नो मनो, न विद्मो न विजानीमो।
पद्य का प्रयोग-
यद् वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।
--केनोपनिषद् १/३-४

क्योंकि इस रचना से परवर्ती कवियों को बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई। अतः कवि पद्मनाभ मिश्र को बाद के चम्पू काव्यों के प्रेरक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

प्रस्तुत कवि का परिचय

पद्मनाभ मिश्र के पिता का नाम बलभद्र मिश्र था तथा माता का नाम विजयश्री था। यह तथ्य इस चम्पू के प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में पुष्पिका से विदित होता है।

बलभद्र मिश्र मुख्यतः दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने वेदान्त तथा न्याय शास्त्र पर अनेक ग्रन्थों की रचनाएं की थीं। शिवादित्य कृत न्याय के महान् ग्रन्थ सप्तपदार्थी पर भी इन्होंने टीका लिखी थी। इन्होंने अपने पुत्रो को विद्याभ्यास कराया था। पद्मनाभ मिश्र बड़े आदर के साथ इन्हें अपना गुरु मानते हैं। किरणावली भास्कर में इन्हें जगद्गुरु कहा है। अपने इस ग्रन्थ के अन्त में पद्मनाभ मिश्र ने आशा प्रकट की है कि मेरी इस रचना से मेरे विद्वान पिता अवश्य ही सन्तुष्ट होंगे[1]!

पद्मनाभ मिश्र के बड़े भाई का नाम विश्वनाथ मिश्र था। किरणावली भास्कर में पद्मनाभ ने बड़े गौरव के साथ अपने को 'विश्वनाथानुज' अर्थात विश्वनाथ का छोटा भाई कहा है। पद्मनाभ के छोटे भाई का नाम गोवर्धन मिश्र था। इन्होंने केशव मिश्र की तर्क भाषा पर 'तर्कभाषा प्रकाश' नामक टीका लिखी थी। इन्होंने अपनी टीका के आरम्भ में बड़े आदर से कहा है कि मैंने अपने बड़े भाई पद्मनाभ से तर्कशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया है[2]। इससे प्रकट है कि पद्मनाभ ने अपने छोटे भाई को पढ़ाया था।

कवि का जन्म स्थान- प्रस्तुत कवि का निश्चित जन्म स्थान ज्ञात नहीं हो सका है। पर यह सुस्पष्ट है कि वह मूलतः पूर्वी भारत का निवासी था। म. म. पं. गोपीनाथ कविराज ने इसे ही प्रमाणित करते हुए कहा है कि परम्परा इसे

---

१ यस्तर्कदुस्तरतरार्णवकर्णधारो वेदान्तवर्त्मनिरताध्वगसार्थवाहः
श्री पद्मनाभरचितेन दिवाकरेण तुष्टोऽमुनास्तु स कृती बलभद्रमिश्रः।।

—किरणावली भास्कर का अन्तिम श्लोक

२ श्री विश्वनाथानुज-पद्मनाभानुजो गरीयान् बलभद्रजन्मा।
तनोति तर्कानधिगत्य सर्वान् श्री पद्मनाभाद् विदुषो विनोदम्।

— तर्कभाषा-प्रकाश टीका का प्रारम्भिक श्लोक

मैथिल स्वीकार करती है[1]। कुछ विद्वान् इसकी भट्टाचार्य उपाधि को देखते हुए इसके 'बंगाल' के होने की कल्पना करते है। पर यह प्रमाणित नहीं है।

इस प्रकार यह विद्वान् मिथिला से पश्चिम की ओर काशी तथा प्रयाग के अलर्क आदि स्थानों में पहुंचा। उस समय अलर्क (आधुनिक अरैल) संस्कृत विद्या का बहुत बड़ा केन्द्र था, जैसा कि स्वयं कवि ने लिखा है। वहां पर वीरभद्र की प्रसिद्धि को सुनकर वह उनकी राजधानी गहोरा में पहुंच गया।

कवि की उपाधि- कवि को 'सकलशास्त्रारविन्दप्रद्योतन-भट्टाचार्य, की उपाधि प्राप्त है। इस उपाधि का प्रयोग इस ग्रन्थ के प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में किया गया है। इस विद्वान् के अनेक शास्त्रों में वैदुष्य को देखते हुए यह उपाधि अत्यन्त समीचीन प्रतीत होती है। म. म. पं. गोपीनाथ कविराज ने माना है कि इनकी विद्वत्ता को प्रमाणित करने के लिए बघेल राज-सभा से ही इन्हें यह उपाधि प्राप्त हुई होगी[2]। यह सर्वथा स्वाभाविक है। क्यों कि वीरभद्र स्वयं संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान् थे। यह उनके द्वारा लिखित 'कन्दर्पचूडामणि' नामक ग्रन्थ से स्पष्ट विदित होता है। साथ ही दोनों की मान्यताएँ भी समान थीं। वीरभद्र अपने कन्दर्पचूडामणि का प्रारम्भ भैरव की दृष्टि के द्वारा कल्याण की प्रार्थना से करते हैं[3]। पद्मनाभ भी प्रस्तुत चम्पू का प्रारम्भ भैरव तथा भैरवी की वन्दना से करते हैं। अतः स्वाभाविक रूप से वीरभद्र ने पद्मनाभ को राज्याश्रय प्रदान किया। उनके साथ शास्त्रचर्चाएँ की तथा अन्ततः उनसे प्रभावित होकर यह उपाधि प्रदान की।

कवि की रचनाएं- कवि की विभिन्न विषयों पर कुल १५ रचनाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनमें किरणावली-भास्कर सर्वप्रमुख है। प्रशस्तपादभाष्य पर उदयनाचार्य ने किरणावली टीका लिखी थी। इसके रहस्य को खोलने के लिए प्रस्तुत विद्वान् ने इस पर यह 'भास्कर' टीका लिखी। इसके अत्यन्त महत्व को स्वीकार करते हुए पं. गंगानाथ झा तथा पं. गोपीनाथ कविराज ने संस्कृत विश्वविद्यालय की सरस्वती भवन ग्रन्थमाला से सबसे पहले नं. १ पुष्प के रूप में १९२० ई. में इस ग्रन्थ को सम्पादित तथा प्रकाशित किया।

---

१ म.म.पं. गोपीनाथ कविराज कृत किरणावली भास्कर की भूमिका पृ. ३

२ वही पृ. ५

३ अरुणाऽपि दक्षकोपात् यनुरक्तेषु सानुरागेव।
कल्याणाय जगत्या दृष्टिः श्री भैरवस्यास्तु।।
—कन्दर्पचूडामणि १।१।१

इनका दूसरा उल्लेखनीय ग्रन्थ प्रशस्तपादभाष्य पर सेतु टीका है। पं. गोपीनाथ कविराज तथा पं. ढुण्ढिराज शास्त्री ने १९२४ ई. में प्रशस्तपादभाष्य पर सूक्ति तथा व्योमवती टीकाओं के साथ-साथ प्रस्तुत सेतु टीका का भी प्रकाशन किया।

साहित्य शास्त्र के लक्षण ग्रन्थों के अन्तर्गत इनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ शरदागम अथवा चन्द्रालोक-प्रकाश है। यह चन्द्रालोक पर विरचित टीकाग्रन्थ है। इसे १९२९ ई. में पं. नारायण शास्त्री खिस्ते ने प्रकाशित किया। पर काव्य शास्त्र के अन्तर्गत प्रस्तुत चम्पू काव्य का पूर्ण रूप से अब तक एक बार भी प्रकाशन नहीं हुआ था।

प्रस्तुत काव्य का काल- सौभाग्य से प्रस्तुत चम्पू का रचनाकाल सुनिश्चित रूप से परिज्ञात है। इस काव्य के अन्तिम श्लोक (युगरामर्तुशशांके.....) के अनुसार यह ग्रन्थ संवत् १६३४ (१५७७ ई.) को चैत्र मास, शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन पूर्ण हुआ। प्राचीनकाल में निश्चित संख्या वाली वस्तुओं से संख्याओं को सूचित करने की परिपाटी थी। इस प्रकार यहां युग ४ संख्या का सूचक है। क्योंकि सतयुग आदि चतुर्युग प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार बलराम, परशुराम तथा रामचन्द्र ये ३ राम प्रसिद्ध हैं। अतएव यहां राम ३ संख्या को प्रकट करता है। ॠतुएँ ६ हैं तथा चन्द्रमा १ ही है। अतः इनसे क्रमशः ६ तथा १ की सूचना प्राप्त होतीहै।

अब 'अंकाना वामतो गतिः' इस प्राचीन प्रसिद्ध नियम के अनुसार इन संख्याओं के क्रम को उलट देना चाहिए। इस प्रकार 'युगरामर्तुशशांके' का अर्थ १६३४ सिद्ध होता है।

यह उल्लेखनीय है कि वीरभद्र ने भी अपने महत्त्वपूर्ण 'कन्दर्पचूडामणि' को इस चम्पू से ठीक एक मास पूर्व संवत् १६३३ की फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को पूर्ण किया था। इससे यह कल्पना स्वाभाविक है कि दोनों ने अपनी-अपनी साहित्य रचना में एक दूसरे से विचार विमर्श प्राप्त किया होगा।

प्रस्तुत काव्य का प्रकाशन- प्रस्तुत चम्पू काव्य की मूल पाण्डुलिपि उदयपुर के सरस्वती भण्डार में सुरक्षित है। इसे संवत् १९९१ की श्रावण शुक्ला १३ तिथि को वहां के तत्कालीन राजा 'महाराणा भूपाल सिंह ने नन्द किशोर शर्मा द्वारा लिखाकर पूर्ण कराया था। यह तथ्य इस ग्रन्थ के अन्त में लिपिक द्वारा जोड़े गये वाक्यों से सुस्पष्ट हैं।

डा. पीटर्सन ने लाहौर में प्राप्त इसकी एक अन्य पाण्डुलिपि का भी उल्लेख किया है। यह पाण्डुलिपि अधिक प्राचीन है। इसके अन्त में लिखे गये वाक्य से सूचित होता है कि इसे संवत् १६४८ (अर्थात् १५६१ई.) को आषाढ शुक्ल तृतीया में जगन्नाथ भट्ट ने लिखकर पूर्ण किया[१]। यहां इस अनुमान का पर्याप्त अवकाश है कि इसे वीरभद्र की प्रेरणा से ही लिखाया गया होगा तथा इसे सुरक्षा की दृष्टि से लाहौर भेजा गया होगा। क्योंकि वीरभानूदय काव्य की पाण्डुलिपि का लेखन भी वीरभद्रदेव द्वारा ही कराया गया था।

डा. हीरानन्द शास्त्री जी ने १६३० ई. में वीरभानूदय काव्य पर कार्य करते हुए इस चम्पू की प्रतिलिपि उदयपुर से मंगवाई थी। इसके पश्चात् कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में प्रोफेसर डा. यतीन्द्र विमल चौधरी का ध्यान इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने १६५२ ई. में प्राच्यवाणी संस्कृत ग्रन्थमाला के अन्तर्गत इसके मूलमात्र का आंशिक प्रकाशन किया। उन्होंने 'पृष्ठों को बचाने की दृष्टि से' इसका पूरा प्रकाशन नहीं किया। अपितु राजवंशों के उद्धरणों के कारण ऐतिहासिक महत्त्व को देखते हुए प्रथम उच्छ्वास का कुछ भाग तथा छठे सातवें उच्छ्वास का प्रकाशन किया[२]।

इस प्रकार अब तक अप्रकाशित ग्रन्थ का मूलतः उदयपुर की पाण्डुलिपि के आधार पर प्रथम बार अनुवाद व्याख्या के साथ अविकल रूप से प्रकाशन किया जा रहा है।

प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु

प्रथम उच्छ्वास- भैरव तथा भैरवी की वन्दना के पश्चात् यह काव्य मन्दोदरी तथा विभीषण के वार्तालाप से प्रारम्भ होता है। आसमान में उठती हुई भयंकर धूल को देखकर मन्दोदरी इसके विषय में पूछती है। विभीषण बताते हैं कि यह रामचन्द्र के पुत्र की सेना द्वारा धूल उड़ाई गई है। पुनः अनेक प्रश्नों के अन्तर्गत वे रामचन्द्र की राजधानी गहोरा बताते हैं। फिर भी किसी कारण से रामचन्द्र बान्धवगढ़

---

१ संवत् १६४८ समये अषाढ़ शुद्ध तृतीयायां सोमे लाहुरपुरे जगन्नाथ भट्टेन लिखितं पुस्तकमिदम् —लाहौर में प्राप्त पाण्डुलिपि का अन्तिम वाक्य।

२ The last two ucchvasas (6-7) of the present kavya bear copious references to the members of the royal family and so on, so these have been printed here in toto. -Introduction by J. B. Chaudhary, page 2

दुर्ग में निवास करते हैं। उसके पश्चात् रामचन्द्र तथा वीरभद्र का विस्तृत वर्णन करते हैं तथा इसकी सेना के प्रयाण का कारण बताते हैं। इस बीच बृहस्पति आते हैं। वे स्वर्ग की कहानी सुनाते हैं कि एक बार इन्द्र शची के पास गए। पर शची ने उन पर ध्यान ही नहीं दिया। कारण पूछने पर उसने कहा कि उसे अति भयंकर आवाज से डर लग रहा है। उसने परिकल्पना की कि यह आवाज मेघ की अथवा मीन, कच्छप, वराह, वामन आदि अवतार धारण करने वाले प्रजापति की, या रामचन्द्र श्रीकृष्ण, बुद्ध, कल्की- इनमें से किसी की नहीं हो सकती। अतः निश्चय ही यह बाणासुर के युद्ध की भयंकर आवाज हो सकती है। तब इन्द्र ने नारद से इस आवाज का कारण पूछा। इस पर नारद ने रामचन्द्र बघेल के विषय में तथा उसकी उदारता, शूरता, सुन्दरता आदि के विषय में विस्तार से बताया तथा यह कहा कि उनके पुत्र वीरभद्रदेव की विजय यात्रा की यह भयंकर ध्वनि है। इस कहानी के पश्चात् विभीषण ने भी वीरभद्र के भयंकर सैन्य प्रयाण का वर्णन किया।

द्वितीय उच्छ्वास- मन्दोदरी पुनः प्रश्न करती है कि इस सेना के प्रयाण में विभिन्न देशों के राजाओं को कैसा डर लगा। इस पर विभीषण ने विभिन्न सुदूरवर्ती देशों में व्याप्त भय का वर्णन किया। उन राजाओं के सैनिकों के डर से भागने तथा राजाओं की स्त्रियों के जंगल में अकेले रहने तथा घूमने के विषय में विस्तार से बताया। इसके पश्चात् सन्ध्या हो आई तथा यह बातचीत रुक गई। विभीषण लंका के द्वारपालों को सावधान करने के लिए गया तथा वहां से बहुत देर बाद लौटा। तब मन्दोदरी यह सोचने लगी कि यह अन्य स्त्री पर अनुरक्त है। अतः वह कुछ नाराज हुई। इस पर विभीषण ने उसे बहुत मनाया। पश्चात् दोनों ने आनन्द से रात्रि बिताई।

तृतीय उच्छ्वास- अगले दिन प्रातःकाल मन्दोदरीं ने पुनः उसी कहानी के विषय में पूछा। विभीषण ने सूर्य को प्रणाम करने के पश्चात् बताया कि सिंगरौली देश की राजा की स्त्रियाँ अत्यन्त भय की दशा में जंगल में अकेले ही भागी जा रही थीं। रोहतास देश की स्त्रियों की भी यही दशा थी। तभी वीरभद्र के पास कामताधिनाथ का कोई दूत कवि पत्र लेकर उपस्थित हुआ। उस पत्र में युद्ध रोकने की प्रार्थना की गयी थी। तब वीरभद्र ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण रोक दिया।

चतुर्थ उच्छ्वास- विभीषण अपने दूत से रामचन्द्र के गुणों का वर्णन

सुनता है। यह दूत अयोध्या में रामचन्द्र के जन्म दिन के उत्सव को देखकर वापस लौटा है। अतः इसे 'रघुपति प्रसाद प्रापक' कहा गया है। विभीषण ने इससे वहां के उत्सव के समाचार को विस्तार से बताने के लिए कहा। तब इस दूत ने बताया कि उनके जन्म दिन के अवसर पर पार्वती के साथ शंकर, जाम्बवान् हनुमान्, महेन्द्र, ब्रह्मा, बृहस्पति विष्णु आदि सभी उपस्थित हुए तथा उन्होंने क्रम से श्रीराम की स्तुति की। इनके पश्चात् अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शुकदेव के साथ व्यासदेव, नारद इत्यादि ने भी श्रीराम की वन्दना की तथा सरयू में स्नान का पुण्य प्राप्त किया।

पञ्चम उच्छ्वास- इस दूत ने अयोध्या से लंका की ओर लौटते हुए बीच के स्थानों को ध्यान से देखा। पहले वह प्रयाग पहुंचा। वहां यज्ञयूप को देखकर 'प्रयाग' नाम की सार्थकता को जाना। पुनः यमुना नदी के समीप अलर्क नगरी के अनेक विषयों के विद्वानों से मिला। उसके पश्चात् अत्यन्त उच्च शिखरों वाले विन्ध्य पर्वत को देखा। पश्चात् बान्धव गिरि की ऊंचाई को देखकर तो वह बहुत अचरज में पड़ गया। वहाँ पर इसने 'बान्धव' नाम का कारण जाना। वहाँ उसने 'नाद' नामक विशाल तालाब देखा। वहाँ उसने अत्यन्त भयंकर जंगल की आग लगने के विषय में भी सुना।

षष्ठ उच्छ्वास- दूत ने बान्धव दुर्ग परिसर में विशाल सैन्य समुद्र को देखा। वहां पर उसने वीरभद्र को तथा उनके बगल में प्रताप रुद्र तथा उदयभानुदेव को देखा। साथ ही वहां तुलाराम मन्त्री भी दृष्टिगोचर हुए। यह सेना अत्यन्त भयंकर तथा विशाल थी। इसमें चौहान, पंवार, नेकवार, बड़गूजर, कछवाह, परिहार सिसौदिया आदि अनेक जातियों के सैनिक सम्मिलित हुए थे। वीरभद्र ने तुलाराम मन्त्री के द्वारा इन सबको पान के बीड़ा से सम्मानित करके अपने पास बिठाया। इन्होंने वीरभानुदेव के भाई यामिनी भानुदेव के पुत्र प्रताप रुद्र तथा उदयभानुदेव को विशेष रूप से अपने पास बिठाया। इन प्रताप रुद्र तथा उदयभानु के पुत्र सूर्यभानु तथा चन्द्रभान भी वहां उपस्थित थे। इस प्रकार की विशाल भयंकर सेना का प्रातःकाल प्रयाण आरम्भ हुआ।

सप्तम उच्छ्वास- दूत ने इस सेना को रत्नपुर पहुंचते हुए देखा। वहां इस सेना के पहुंचने पर रत्नपुर नगर के लोग भाग खड़े हुए थे। वहां की सेना के हाथी, घोड़े आदि भी सर्वथा अव्यवस्थित अस्त व्यस्त हो गये थे। जंगल के पशु, पक्षी भी भय के कारण मृत्यु के समीप हो गये थे। इस स्थिति में करके

वीरभद्र ने वहां के राजाओं से अनेक प्रकार के कर वसूल किया तथा पुनः महाराज रामचन्द्र बघेल के आदेश से वापस आकर अपने महल में विराज गये।।

प्रस्तुत काव्य की वर्णन शैली

प्रस्तुत चम्पू में समूची कहानी का वर्णन यह मानकर किया गया है कि उस समय लंका में विभीषण राज्य कर रहे थे तथा मन्दोदरी उनकी पत्नी बन गई थी। साथ ही उस समय श्री रामचन्द्र अपनी राजधानी में विराज रहे थे, जहां उनका जन्म दिन आदि उत्सव बड़े उल्लास से मनाये जाते थे।

प्रतीत होता है कि कवि को इस प्रकार के वर्णन की प्रेरणा रामचन्द्र बघेल को रघुकुल शिरोमणि श्री रामचन्द्र से अभिन्न मान लेने के कारण प्राप्त हुई थी। कवि ने इस काव्य में अनेक अलंकारों के अन्तर्गत यह माना भी है कि रामचन्द्र बघेल स्वयं श्री रामचन्द्र ही है। अन्तर केवल यह है कि श्री रामचन्द्र के विभीषण सेवक हैं। पर रामचन्द्र बघेल के 'विभीषण' नामधारी कोई सेवक नहीं है[१]। प्रो. जे. बी. चौधरी जी ने भी यह माना है कि इस अनन्यता को स्वीकार करने के कारण ही कवि ने विभीषण, मन्दोदरी आदि का वार्तालाप कराया है[२]।

उस समय अन्य कवियों में भी रामचन्द्र बघेल को श्री रामचन्द्र से अभिन्न मानने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गयी थी। वीरभानूदय काव्य में कहा है कि पिता वीरभानु ने अपने पुत्र को श्री रामचन्द्र से साक्षात् अभिन्न समझते हुए यह नाम प्रदान किया था[३]। साथ ही उस समय लंका में विभीषण राज्य कर रहे हैं, यह मानते हुए पुनः वहां कहा है कि रामचन्द्र की सेना के प्रयाण के समय समुद्र से घिरी लंका में विभीषण की नींद हर ली जाती थी[४]।

---

१ रामचन्द्रोऽप्यननुचरविभीषणः- प्रस्तुत काव्य प्रथम उच्छ्वास १७वें श्लोक के आगे।

२ The name of the father of the hero i. e. 'Ramchandra' probably suggested to the poet the introduction of the narrative of the present work in the form adopted by him. - Introduction by J.B. Chaudhary- p. 2

३ श्रीमान् राम इवैष मण्डलपतिर्भावी यशो निर्मलः।
स ज्ञात्वेति युनक्ति तं कृतगुणं श्री रामचन्द्राख्यया ।
--वीरभानूदयकाव्य ७.६२

४ तत्पुत्रस्य तव प्रयाणसमये जेतुं दिशामण्डलं
लंकायां च विभीषणोऽम्बुधिवृतौ निद्रा दरिद्रायते। --वही ६.३०

परवर्ती कवियों में भी इस रीति को स्वीकार करने की प्रवृत्ति जारी रही। क्योंकि बघेल-वंशवर्णनम् में भी श्लेष अलंकार का प्रयोग करते हुए कहा है कि हनुमान् के बल से युक्त, सुग्रीव जैसे सेनापति से सेवित, अंगद से सुशोभित रामचन्द्र की सेना आज भी लंकापुरी को भयभीत करती है[1]।

इस प्रकार यहां रामचन्द्र बघेल के समय मन्दोदरी विभीषण आदि का वार्तालाप अनैतिहासिक होकर भी काव्य की दृष्टि से सुसंगत है।

काव्य में ऐतिहासिक तत्त्व

प्रस्तुत चम्पू काव्य के द्वारा कुछ ऐतिहासिक तथ्यों की सुनिश्चित जानकारी प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ-

१- प्रस्तुत काव्य के समय रामचन्द्र बघेल की राजधानी गहोरा ही थी। जैसा कि काव्य के १३वें श्लोक में कहा है। यह सूचना बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि हम जानते हैं कि १५६४ ई. में रामचन्द्र का अकबर के सेनापति आसफ खां के साथ भयंकर युद्ध ठन गया था। इसमें गहोरा की बड़ी हानि हुई थी तथा उन्हें इसे छोड़ देना पड़ा था। जुलाई १५६६ ई. को कलिंजर का किला भी अकबर को सौंप देना पड़ा था। फिर भी प्रस्तुत काव्य के समय तक इस बघेल नरेश ने गहोरा पर अधिकार नहीं छोड़ा था।

पर इसके पश्चात् शीघ्र ही किसी समय अवश्य ही गहोरा छोड़ दिया गया था। क्योंकि बघेलवंश-वर्णनम् में गहोरा के स्थान पर रामनगर को राजधानी बताया है[2], जो कि सतना जिले के अमरपाटन तहसील में अवस्थित थी।

२- इस काव्य के समय गहोरा के राजधानी बने रहने पर भी रामचन्द्र बघेल ने, काव्य के अनुसार 'किसी कारण' गहोरा को छोड़ दिया था तथा बान्धवगढ़ दुर्ग का सहारा लिया था। काव्य में कहा है कि यह तो राजाओं की राजनीति है कि वे शत्रु के विनाश की प्रतीक्षा में दुर्ग का सहारा लेते हैं। जैसे कंस आदि अनेक शत्रुओं को मारने के पश्चात् भी श्रीकृष्ण मानों जरासन्ध से डरकर मथुरा को छोड़कर द्वारका पहुंच गये थे[3]।

---

१ पवनात्मजबलकलिता सुग्रीवराधिता यस्य। अंगदचर्चितशोभा सेना लंका भयं तनुते। बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ३६

२ बघेल वंश वर्णनम् श्लोक ५२-५४

३ प्रस्तुत चम्पू काव्य- प्रथम उच्छ्वास १६वां श्लोक तथा उससे पहले।

इससे इतिहास का यह तथ्य सही सिद्ध होता है कि राजा रामचन्द्र उस समय अकबर के सेनापति आसफ खां के दबाव में गहोरा को छोड़कर बान्धवगढ़ में शरण ले चुके थे।

३- रामचन्द्र बघेल के पुत्र वीरभद्रदेव ने अनेक सैनिक अभियान किये थे। काव्य में इस अभियान के दो कारण बताये गये है। पहले कहा है कि वीरभद्र की माता यशोदा ने ब्राह्मणों के लिए हाथियों का दान करने के निमित्त कुछ हाथी कुछ सामन्तों को सौंपे थे। पर उन्होंने ब्राह्मणों को यह दान नहीं दिया। अतः उन्हें दण्ड देने के लिए यह सैन्य प्रयाण किया गया[१]। अन्त में कहा है कि राजाओं से अनेक प्रकार के कर वसूल करने के पश्चात् उसने सैन्य प्रयाण को रोका[२]। यह सैनिक अभियान पूर्व तथा दक्षिण दिशाओं में किया गया था।

पूर्व की ओर अभियान के अन्तर्गत सीधी जिले की सिंगरौली तहसील की ओर तथा उसके पश्चात् मिर्जापुर के रोहतास दुर्ग की ओर यात्रा की गयी थी। इस अभियान से लोगों में भगदड़ मच गयी थी। इस समय इन शत्रु राजाओं की स्त्रियों के भागने तथा जंगल में अकेले शरण लेने का बड़ा ही करुण तथा सजीव वर्णन तृतीय उच्छ्वास में किया गया है।

दक्षिण की ओर अभियान के अन्तर्गत जबलपुर के गढ़ा[३] तथा बिलासपुर के अन्तर्गत रत्नपुर की यात्राएँ की गयी थी। गढ़ा की ओर वीरभद्र के पूर्वज वीर सिंह ने भी अभियान किया था[४]।

रत्नपुर की ओर अभियान का वर्णन छठे उच्छ्वास में बड़े विस्तार से किया गया है। कवि ने इस अपनी आंखों से देखा था[५]। अतः इसका सजीव वर्णन स्वाभाविक ही है।

बघेल नरेशों का रत्नपुर के साथ विचित्र सम्बन्धों का एक लम्बा इतिहास रहा है। समय समय पर इसके साथ सन्धि तथा विग्रह दोनों होते रहे हैं। वीरभानूदय

---

१ तेषु मध्ये केचित् गजा ब्राह्मणेभ्यो न दत्ता, तानदण्ड-प्राप्तान् दातुमयमुद्योगः।चम्पू प्रथम उच्छ्वास।

२ प्रस्तुत चम्पू ७.५

३ प्रस्तुत चम्पू २.४

४ गढापतिं जेतुमगाद्व वीरः सेनावृतः शक्र इवादिवर्गम्।- वीरभानूदय काव्यम् २.५६

५ चलितेन विलोचनातिथीरचितो वर्त्मनि सैन्य सागरः-प्रस्तुत चम्पू ६.१

काव्य के अनुसार सबसे पहले वीरसिंह ने रत्नपुर पर आक्रमण करके वहां के राजा को पराजित किया था तथा उससे खूब कर वसूला था[1]। तब बघेल नरेशों के साथ रत्नपुर के राजाओं की मित्रता हो गई थी। इसीलिए रत्नपुर के राजा दादूँ राय ने अपनी पुत्री राजमती को वीर सिंह के पुत्र वीरभानु के साथ ब्याही थी। ये वीरभानु की प्रधान पत्नी या बड़ी रानी बनी[2]। यहां भाग्य का कमाल देखिये! रानी राजमती जब गर्भिणी हुईं तो वीरभानु ने उनसे 'दोहद' अर्थात् गर्भिणी की इच्छा के विषय में पूछा। इस पर राजमती ने कहा कि मेरे पिता रत्नपुर के राजा दादूँ राय शत्रुओं को नहीं जीत पाते हैं। अतः आप रत्नपुर पर विजय प्राप्त कीजिये[3]। इस पर वीरभानु ने रत्नपुर पर आक्रमण किया। इस प्रकार रत्नपुर की बेटी ने ही रत्नपुर पर आक्रमण करा दिया!!

इस प्रकार के विचित्र सम्बन्धों की उथल पुथल के बीच वीरभद्रदेव को भी रत्नपुर पर आक्रमण करना पड़ा। अपनी विशाल सेना के बल पर उन्होंने इसे पराजित किया तथा इस बार भी यहां के राजाओं से खूब कर वसूला।

४- वंशगत सूचनाएं - प्रस्तुत चम्पू से बघेल वंश के विषय में भी कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं। छठे उच्छ्वास में बताया गया है कि सेना के प्रयाण के समय प्रताप रुद्र तथा उदयभानुदेव ये दोनों वीरभद्र के बगल में उपस्थित थे। ये दोनों वीरभानु के छोटे भाई यामिनीभानु के पुत्र थे। जमाबन्दियों में इन्हें मैहर का बताया है[4]। क्योंकि इन्हें बंटवारे में सोहागपुर तथा मैहर का इलाका प्राप्त हुआ था। वीरभद्र इनके इन दोनों पुत्रों का बहुत सम्मान करते थे। आगे चलकर इसी उच्छ्वास में प्रतापरुद्र के पुत्र सूर्यभानु तथा उदयभानु के पुत्र चन्द्रभानु का भी उल्लेख किया गया है। ये भी सेना में सम्मिलित थे। क्योंकि ये अत्यन्त वीर थे।

इस सेना में सम्मिलित होने वाले रत्नसेन तथा इसके भाई हेमसेन का

---

१ आदत्तवांस्तं स तदा विजित्य करं च तस्माद् बहुधा भयार्तात्
—वीरभानूदयकाव्यम् २.६५

२ अथ राजमती देवी दिव्य सौन्दर्यशोभिनी। सर्वासां धर्मपत्नीनां तस्यासीच्चित्तहारिणी
—वीरभानूदय काव्यम् ७.१

३ मदीयः स पिता त्यक्तराजनीतिर्विजीयताम्। पुरे रत्नपुरे पौरैस्त्वत्सनाथैः प्रहृष्यताम्
—वीरभानूदय काव्यम् ७.७०

४ लहुरे जमुनीभानदेव मैहर के। -एकंत्रा जमाबन्दी १

भी यहां उल्लेख किया गया है[1]। रत्नसेन आरिष्टनेमि वंशी गोरखपुर के राजा थे तथा वीरभद्र की माता यशोदा के भाई थे। यह तथ्य वीरभानूदय-काव्य से स्पष्ट ही प्रमाणित है[2]।

काव्य में अतिरंजना के प्रयोग- प्रस्तुत चम्पू-काव्य समकालीन इतिहास के वर्णन के लिए प्रतिबद्ध है। पर इसके काव्य होने के कारण इसमें कहीं कहीं अतिशयोक्ति के स्वर भी आ गये है। संस्कृत काव्य की प्राचीन परंपरा के अनुसार राजाओं की प्रशंसा के आवेश में कुछ ऐसे वर्णन भी हैं, जो इतिहास की मूल भावना से दूर चले गये है। उदाहरणार्थ-

१- इसके दूसरे उच्छ्वास के प्रारम्भ में ही कहा है कि वीरभद्र की सेना से दूर २ के लोग बहुत डर गये थे। आगे तीसरे तथा चौथे श्लोक में स्थानों का नाम लेते हुए कहा है कि काश्मीर, काबिल (काबुल) राढा चम्पारन, तीरभुक्ति कर्णाट (कर्नाटक), द्रविड़ (आन्ध्र प्रदेश), वंग, अंग (बंगाल इत्यादि) इन देशों के राजाओं में घबराहट फैल गई थी।

स्पष्टतः इन नामों से केवल कवि की भौगोलिक जानकारी सूचित होती है। इनके साथ युद्ध के इतिहास से कोई संबंध नहीं है। इसी प्रकार तृतीय उच्छ्वास में पहले सिंगरौली की ओर तथा उसके पश्चात् मिर्जापुर के रोहतास दुर्ग की ओर आक्रमण का विस्तृत वर्णन १४वें श्लोक तक किया जाता है। इसके तुरन्त पश्चातं १५वें श्लोक में अचानक विद्युत् वेग से (!) वीरभद्र के विजय प्रयाण को कलकत्ता के गंगा सागर तक पहुंचा दिया जाता है!! यहां कामताधिनाथ का दूत प्रार्थना करता है कि वीरभंद्र समुद्र के आगे यात्रा न करें। इस पर वीरभद्र तत्काल वापस लौट आते हैं।

स्पष्टतः यह वर्णन अतिरंजना से परिपूर्ण है। तथ्य केवल यह है कि उनके द्वारा पूर्व में रोहतास दुर्ग तक आक्रमण किया गया था।

३. दक्षिण की ओर विजय यात्रा के सन्दर्भ में तो बार बार यह कहा गया है कि उनकी इस यात्रा का उद्देश्य दक्षिण समुद्र तक पहुंचना है। विभिन्न शब्दों से इस तथ्य का अनेक बार वर्णन है[3]। मन्दोदरी को धीरज बँधाते हुए

---

१ प्रस्तुत चम्पू काव्य ६.१६

२ वीरभानूदय काव्यम् ६.३७

३ (क) केनचिन्निमित्तेन सागरावधिरेवायं यात्राविधिःप्रस्तुत चम्पू का प्रथम उच्छ्वास २२वें श्लोक से आगे

भी यही कहा गया है कि उनका समुद्र पार करने का कोई इरादा नहीं है। क्योंकि
दक्षिण समुद्र तट ही इस अभियान की सीमा है।

इसके वर्णन क्रम में बान्धवगढ़ से दक्षिण रत्नपुर के लिए विशाल सैनिक अभियान तथा वहां पर सेना के भयंकर आक्रमण का वर्णन बहुत विस्तार से छठे तथा सातवें उच्छ्वास में किया गया है। इस सातवें उच्छ्वास के चौथे श्लोक तक रत्नपुर के लोगों की घबराहट तथा पशु, पक्षियों तक की खराब दशा का वर्णन किया गया है। उसके तत्काल पश्चात् पांचवें श्लोक में वीरभद्र अचानक रत्नपुर से पुनः विद्युत् वेग से (!) दक्षिण समुद्र के किनारे तक पहुंच जाते हैं। वहां पहुंचकर सब राजाओं से कर लेकर अपने पिता के आदेशानुसार उसी समय वापस लौटकर अपने महल में विराजने भी लगते है[1]। इस प्रकार के अचानक वर्णन को देखकर कोई भी पाठक हक्का बक्का रह जाता है।

यहां भी वास्तविकता यही है कि ऐतिहासिक रूप से केवल रत्नपुर तक सैनिक अभियान हुआ था। उसके पश्चात् समुद्रावधि वर्णन राजा की प्रशंसा के लिए कवि कल्पना मात्र है।

४. अन्य वर्णनों का तो कवि समय कहकर समाधान किया जा सकता है। जैसे चौथे उच्छ्वास के चौदहवें श्लोक में मानसरोवर में होने वाले कमलों का वर्णन है। यद्यपि वहां कोई कमल नहीं पाये जाते। फिर भी यह बहुत समय से चली आ रही कवियों की मान्यता अथवा 'कवि-समय' है। इसीलिए बाणभट्ट ने भी अपने हर्षचरित में मान सरोवर को पंकजालय कहा है[2]।

प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

१. रामचन्द्र- महाराज रामचन्द्र वीरभद्रदेव के पिता हैं। अतः इनका वर्णन स्वाभाविक ही है। ये अत्यन्त वीर हैं। तीनों रामों से अधिक इनका प्रौढ़ प्रभाव है। (१.१२)। इनकी उदारता अतुलनीय है। इनकी शूरता की कीर्ति को चन्द्रमा के समान कैसे बतावें। क्योंकि कीर्ति अत्यन्त धवल है। पर चन्द्रमा तो 'दोषाकर' होने से दोष का घर भी है। (१.५१) (इसका समाधान श्लेष से होता है।

(ख) रचितद्विषदवहेलाजलनिधिवेलावधि प्रथितः —वही ६.१५

१ पाथोधिवेलावधिभूमिपालसमर्पितानेककरप्रकारान्।आदायभूमीपतिरामचन्द्रनिदेशतःस्वे भवने चकास्ति। —वहीं ७.५

२ अवतर कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पंकजालयम्।
—हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास।

क्योंकि वस्तुतः 'दोषा' अर्थात् रात्रि का निर्माण करने वाला होने से इसे 'दोषाकर' कहा जाता है।) इसी प्रकार उनके अत्यधिक सुन्दर होने के कारण लोग कहते थे कि तलवार ही हाथ में लीजिये। क्योंकि बाण हाथ में लेने पर तो लोग आपको साक्षात् कामदेव समझ लेते हैं। (१.५२) । कामदेव के ५ बाण होते हैं, वे अतिसुन्दर भी हैं, अतः वे कामदेव के प्रतिरूप बन जाते हैं। इसी प्रकार इस ग्रन्थ के अन्त में भी इन्हें सुन्दरता में कामदेव को पराजित करने वाले उदारता में कर्ण को हरा देने वाले इत्यादि कहा गया है। ऐसा वर्णन कन्दर्प-चूडामणि के वर्णन से भी तुलनीय है[1]।

२. वीरभद्रदेव- यही इस काव्य के नायक हैं। अतः अनेक बार इनका विस्तार से वर्णन है। यह सेना संचालन के द्वारा युद्ध में कुशल होने के साथ-साथ संस्कृत के महाविद्वान् भी थे। इनकी विद्वत्ता का प्रमाण इनका प्रौढ़ ग्रन्थ 'कन्दर्पचूडामणि' है। इनके स्वयं कवि होने के कारण ही इनके पास सुन्दर, ललित भाषा में पत्र लेकर एक कवि को भेजा गया था (३.१६)। ये अत्यन्त मातृ-पितृ भक्त हैं। प्रथम उच्छ्वास में माता की ही आज्ञा से हाथी का दान न करने वालों को दण्ड देने के लिए सैन्य प्रयाण किया था। (१.२४)। इसी प्रकार सप्तम उच्छ्वास में पिता की आज्ञा से सेना के प्रयाण को रोक देते हैं। (७.५) वे अपनी वीरता से अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करते हैं तथा राजाओं को कर देने के लिए विवश कर देते हैं। ये धनुष के संचालन में अर्जुन से जरा भी कम नहीं है। इस प्रकार के वर्णन कन्दर्प चूडामणि से भी तुलनीय है[2]।

प्रमुख स्थानों के नाम

प्रस्तुत काव्य में प्रसंगतः अनेक स्थानों का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ-

१. गहोरा- यह उस समय बघेल नरेशों की राजधानी थी। अतः उसका

---

१ सौन्दर्यजितमनोभवौदार्यपराभूतकर्ण...सप्तम उच्छ्वास का अन्तिम अंश। यह तुलनीय है-
कामादप्यभिरामो भीमादपि बहुशालिनां मान्यः।
कर्णादपि च वदान्यो जयति सुतो रामचन्द्रोऽस्य। –कन्दर्पचूडामणि १.१.११

२ श्री वीरभद्रयूनोऽनूनस्य ज्याग्रहे पार्थात्। –प्रस्तुत चम्पू ६.३५। यह तुलनीय है-
राजोचितगुणसीमा भीमावरजादिहाधिको धनुषि।
तनयो विनयसमुद्रो जयतितरां वीरभद्रोऽस्य। –कन्दर्पचूडामणि १.१.१३

वर्णन स्वाभाविक है। प्रथम उच्छ्वास के १३वें श्लोक में इसे अत्यन्त अलंकृत दिशाओं वाली बताया है। यहां पर मतवाले हाथी चारों तरफ घूमते रहते हैं। इस प्रकार के वर्णन वीरभानूदय काव्य २.७ के आगे पाये जाने वाले विस्तृत वर्णनों से तुलनीय है।

अन्य स्थानों के वर्णन पञ्चम उच्छ्वास में रघुपति-प्रसाद-प्रापक दूत के मुख से कहलाए गये है। जब वह श्रीराम के जन्मोत्सव में भाग लेकर वहां से लंका की ओर लौटता है। कुछ स्थान इस प्रकार हैं।

२- प्रयाग- यहां पर दूत ने यज्ञ का यूप अर्थात् खम्भा को देखा था। इससे उसे 'प्रयाग' इस नाम की सार्थकता प्रतीत हुई। यहां उसने श्याम प्रभा वाली तथा गंगा से मिलने वाली यमुना नदी को भी देखा था। (५.१-३)

३- अलर्क नगरी- दूत ने प्रयाग से चलकर गंगा यमुना के तट पर अवस्थित अलर्क नगरी को देखा। डा. हीरानंद शास्त्री जी ने माना है कि नैनी के पास गंगा तट पर बसा हुआ वर्तमान अरैल ही अलर्क है। यहां पर न्याय, सांख्य, मीमांसा आदि के विद्वान् विराजते थे। (५.४)। वीरभानूदय काव्य से भी प्रमाणित है कि यह स्थान उस समय इन विद्याओं का बहुत बड़ा केन्द्र था[१]।

४- विन्ध्य पर्वत- कवि ने दूत के मुख से इस पर्वत का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। एक श्लोक में कहा है कि इस पर्वत के शिखर इतने ऊंचे हैं कि सूर्य कब उदय हुआ, कब अस्त हुआ इसका परिज्ञान ही नहीं हो पाता। पर यहां जगह जगह इतने अधिक तालाब हैं तथा इतने अधिक खिलने वाले कमल है कि उन्हें देखकर लोग सूर्य के उदय तथा अस्त होने का अनुमान लगा लेते हैं ! ! (५.५)

५. बान्धव गिरि- आगे चलकर बान्धव गिरि की ऊंचाई को देखकर तो यह कवि अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठा है। कवि का मानना है कि सूर्य यहां आकर इसके शिखर के साथ टकराने के डर से अपनी गति को सीधा नहीं रख पाता। इसीलिए वह उत्तरायण या दक्षिणायन की ओर चलने लगता है!! (५.७)

---

१ **तुलनीय है-**
वेदान्तसिद्धान्तविदो द्विजेन्द्रा वैशेषिका न्यायविदो महान्तः।
मीमांसकाः सांख्यनिविष्टचिन्ताः पातञ्जलास्तं निषिषेविरे च।।
वीरभानूदयकाव्यम् १२.३६

इस प्रकार की परिकल्पना परवर्ती कवियों को बहुत ही मनोहारी प्रतीत हुई। क्योंकि बघेल-वंशवर्णनम् में भी यह कहा गया है कि इसकी ऊंचाई को देखकर सूर्य को यह भ्रम होता है कि विन्ध्य पर्वत पुनः सिर उठाकर रास्ता रोकने लगा है। तब सूर्य आगे बढ़ने से रुक जाता है। पुनः इन्द्र सहित अनेक देवताओं के लड़खड़ाते स्वर से बार बार प्रार्थना करने वह पुनः आगे बढ़ना प्रारम्भ करता है[1]!!

विन्ध्य पर्वत के हाथी- कवि ने इन हाथियों का सीधा वर्णन नहीं किया है। पर वह अन्य वर्णनों के प्रसंग में बार-बार मनोहारी अलंकारों के साथ इनका उल्लेख करता है। इससे लगता है कि वह यहां के हाथियों की बहुलता तथा विशालता से अभिभूत है। गहोरा के वर्णन के प्रसंग में कहा है कि यहां चारों ओर मतवाले हाथी घूमते रहते हैं। आगे रामचन्द्र बघेल के विषय में कहा है कि वे विन्ध्य पर्वत के समान अनेक हाथियों को रखने वाले थे। (विन्ध्य इवानेकवारणः) यहीं शची वर्णन के प्रसंग में भी श्लेष से वारण का प्रयोग किया गया है। पांचवें उच्छ्वास में विन्ध्य पर्वत के लिये एक अति सुन्दर विशेषण 'सिन्धुरबन्धुरः' प्रदान किया गया है। इसका शाब्दिक अर्थ 'हाथियों के द्वारा मनोहारी' यह है। वीरभानूदयकाव्य में भी यहां के हाथियों के वर्णन के अवसर पर कवि की आलंकारिक प्रतिभा जाग उठी है[2]।

युद्ध में सम्मिलित जातियां

रत्नपुर के लिए वीरभद्र के सैनिक अभियान के अवसर पर अनेक जाति के वीरों ने भाग लिया था। प्रस्तुत काव्य के छठे उच्छ्वास में इनका विस्तार से उल्लेख किया गया है। इसमें प्रमुखतः इन जातियों के लोग सम्मिलित थे- तोमर, चौहान (प्रमुखतः रीवा के मऊगंज तहसील आदि में अवस्थित), यादव, खीचर, पंवार (सतना जिले के बरौंधा के वीर) नैकवार, किकान, दिखित (सतना के गोंरैया के राजवंश के लोग), बडगूजर सकरवार, गहरवार, चन्देला, सुरुकि, कुशिकवंशी कौशिक, पुलस्ति वंशी, रखसेला, भारद्वाज, कछवाह, सिसौदिया, प्रतिष्ठान, मुद्गल।

---

१ दृष्ट्वा दृष्ट्वा मुहुरतिलसद् वृद्धिमेतस्य सूर्यो
विन्ध्योत्थानभ्रमहतमना स्थैर्यमार्यः प्रयाति।
देवैः सैन्द्रैः स्खलितवचनैः प्रार्थितः सोऽयमुच्चै-
राराद‌ाराद्‌धृतपदयुगो व्योम्नि भूयोऽप्युदेति। --बघेलवंशवर्णनम् श्लोक ४४

२ विषयानगजान् गजान् पुनः समदाद् दुर्गपतित्वमादृतः।--वीरभानूदयकाव्यम् ८.४४

इनके साथ ही 'परिहार' जाति के वीर सैनिक भी इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे[1]। ये आधुनिक सतना के प्रमुखतः नागौद उँचेहरा आदि स्थानों के राजवंशी वीर थे। वीरभानूदय काव्य से ज्ञात होता है कि सज्जनपुर के पास 'नरो' नामक स्थान पर भी परिहारों का गढ़ था। क्योंकि वहां वीरसिंह बघेल का विक्रमादित्य परिहार के साथ युद्ध हुआ था[2]।

इस विवरण से प्रकट है कि उस युद्ध के अभियान के लिए आधुनिक सतना, रीवा के अनेक जातियों के वीर सम्मिलित हुए थे। मैहर तथा सोहागपुर के तो स्वयं सूर्यभानु तथा चन्द्रभानु ने इसमें भाग लिया था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि इस समय वीरभद्रदेव का इस क्षेत्र पर व्यापक प्रभाव था। इतिहासकारों ने यह माना है कि वीरभद्र प्रायः मुगल दरबार की हाजिरी में बने रहते थे। पर इस युद्ध से प्रकट है कि इन्होंने इस क्षेत्र पर भी अपना प्रभाव बनाये रखा था। प्रस्तुत काव्य इस युद्ध के पश्चात् शीघ्र ही रचा गया था। अतः १५७५ ई. के आस पास रत्नपुर में इस युद्ध का लड़ा जाना संभावित है।

प्रस्तुत चम्पू की विशिष्टता तथा काव्य सौन्दर्य

इस चम्पू में बाणभट्ट के गद्य काव्यों की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। पर कतिपय स्थलों में कादम्बरी से भी अधिक विशिष्ट दिखाने का प्रयास प्रतीत होता है। कादम्बरी में अतिदीर्घ समास-युक्त वाक्यों का प्रयोग किया गया है। पर उन सबका विशेष्य एक ही होता है। मुख्यतः बहुव्रीहि समास में विशेषणों की बहुलता होने पर भी एक ही विशेष्य आवश्यक माना जाता है । साथ ही वहां व्यधिकरण समास का भी अपेक्षाकृत कम प्रयोग होता है। पर प्रस्तुत चम्पू में बहुव्रीहि समास में भी अनेक विशेष्यों के साथ साथ व्यधिकरण समास की भरमार दिखाई गयी है। इस प्रकार वह वाक्य तथा अनुवाद भी अतिक्लिष्ट हो गया है। उदाहरण के लिए प्रथम उच्छ्वास में २१वें श्लोक के आगे वीरभद्र के वर्णन प्रसंग में अतिदीर्घ-समास-पदावली में शंकर से प्रारम्भ करके बीच में मंदाकिनी, चन्द्रमा, हिमालय, श्वेत कमल, यशः समूह, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आदि

---

१ प्रभुं पृतनया प्राप्ताः परिहाराः प्रहारिणः —प्रस्तुत चम्पू ६.४२

२ तं विक्रमादित्यनृपः प्रपेदे युद्धाय चोन्मत्तकरीन्द्रयूथः।
योधाग्रणीभिः परिहार जातैर्वृतो मरुत्वानिव देवजातैः।।
—वीरभानूदयकाव्य २.४१

होते हुए अन्त में वीरभद्र तक पहुंचते है। इसी प्रकार सप्तम उच्छ्वास के अन्त में रामचन्द्र के वर्णन प्रसंग में भी ऐसा ही देखा गया है। इसी प्रकार के भारी भरकम घुमावदार वर्णन से सामान्य पाठक ठगा सा रह जाता है। लगता है कि उस समय संस्कृत- लेखन की जो नई पद्धति प्रारम्भ हुई थी, उसका ही यह एक निर्दशन है।

इसके साथ ही प्रस्तुत चम्पू में काव्य सौन्दर्य के सभी गुण वर्तमान है। इसमें कहीं तो श्लेष से युक्त उपमालंकार है, कहीं श्लेष के साथ विरोधाभास अलंकार है। सभी की कादम्बरी के प्रयोगों से तुलना की जा सकती है। जैसे-

वाहिनीपतिरप्यजडाश्रयः- चम्पू प्रथम उच्छ्वास १७ श्लोक से आगे

तुलनीय- **आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्**-कादम्बरी कथामुख शूद्रक वर्णन

इसीप्रकार

सीमानमिव सौन्दर्यस्य- चम्पू प्रथम उच्छ्वास २८वें श्लोक से आगे

तुलनीय- **निर्मोकमुक्तिमिव गगनोरगस्य**- हर्षचरित प्रथम उच्छ्वास।

पर यह ध्यान देने योग्य है कि कहीं भी कादम्बरी के उपमानों को दुहराया नहीं गया है। अपितु नये नये उपमानों की उद्भावना की गयी है।

प्रस्तुत काव्य मूलतः वीर-रस से ओत-प्रोत है। अतः इसमें इस रस के अत्यधिक वर्णन हैं। १.४८-५१ के श्लोक वीर रस की कल्पना के सर्वथा अनूठे प्रयोग हैं। पर कथा की आवश्यकता के अनुसार अन्य रसों का भी समावेश है। श्लोक ३.१७ में ऐसे करुण रस का प्रयोग है कि करुणा को भी करुण आ जाय !! इससे यह भी ज्ञात होता है कि उन दिनों युद्ध के समय जंगल में भागती हुई स्त्रियों की कैसी दुर्दशा होती थी !!

प्रस्तुत काव्य के चम्पू होने के कारण इसमें गद्य तथा पद्य दोनों के अतिमनोहारी प्रयोग देखे जा सकते हैं। साथ ही इसमें संवादों के प्रयोग के कारण नाट्य का रूप भी आ गया है। इस प्रकार इस एक ही रचना में काव्य की अनेक विधाएं देखी जा सकती हैं। इसमें स्थान स्थान पर विविध अलंकारों के प्रयोग के द्वारा वर्णन को अतिसुन्दर बना दिया गया है। संक्षेप में यह काव्य की सभी विशिष्टताओं का समाहित रूप हैं।

आत्म-निवेदन तथा धन्यवाद प्रकाशन

बघेलखण्ड के इतिहास तथा तत्कालीन काव्य के विलक्षण स्वरूप को जानने हेतु बहुत समय से इसके प्रकाशन की आवश्यकता का अनुभव किया

जा रहा था। पद्मनाभ मिश्र के महान् पाण्डित्य को देखते हुए अनेक विद्वानों ने इनके दर्शन शास्त्र आदि विषयक ग्रन्थों का प्रकाशन किया भी था। पर काव्य शास्त्र का यह उत्कृष्ट ग्रन्थ अब तक अप्रकाशित ही रहा। मुझे सन्तोष है कि मैंने इसका प्रकाशन करके पं. गंगानाथ झा तथा पं. गोपीनाथ कविराज जैसे महाविद्वानों के बचे हुए कार्य को पूरा करने का एक विनम्र प्रयास किया हैं ।

इस काव्य की आंशिक छाया प्रति मुझे रीवा किला के सरस्वती ग्रन्थागार से प्राप्त हुई। इसके लिए मैं किला के तत्कालीन कंट्रोलर महोदय पं. रमाशंकर मिश्र का बहुत कृतज्ञ हूं। आपने कृपापूर्वक इस सारस्वत यज्ञ में सहयोग प्रदान किया, यह बहुत प्रशंसनीय है।

इस ग्रन्थ के आंशिक भाग की छाया प्रति मुझे नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के अधिकारियों के सौजन्य से प्राप्त हुई। उनके निष्ठापूर्वक संरक्षण के द्वारा यह ग्रन्थ पूर्ण हो सका, यह सचमुच महती प्रसन्नता का विषय है। मैं इसके लिए राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता एवं धन्यवाद प्रकट करता हूं ।

इस ग्रन्थ के विषय में अनेक सूचनाएं एकत्र करने में डा. राजीव लोचन अग्निहोत्री जी तथा डा. जतीन्द्र विमल चौधरी जी ने महान् परिश्रम किया है। सचमुच उनके ही परिश्रम से इसके विषय में अनेक तथ्य जाने जा सके हैं। अतः मैं इन महाविद्वानों के प्रति श्रद्धावनत होकर कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में विद्वानों में वरेण्य, सम्माननीय अभिराज डा. राजेन्द्र मिश्र जी ने 'शुभाशंसा' लिखने की महती कृपा की है। आप संस्कृत जगत् के देदीप्यमान रत्न हैं। आपने अपने प्रौढ़, प्राञ्जल एवं सशक्त मौलिक लेखन से संस्कृत के लिए सर्वथा नये आयाम विकसित किये हैं। आपने मुझे जो प्रोत्साहन प्रदान किया, उसके लिए मैं सचमुच नहीं जानता कि किन शब्दों में आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करूं।

इस अतिक्लिष्ट ग्रन्थ का सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद किया गया है। अतः बहुत प्रयत्न करने पर भी कहीं अशुद्धि रह जाना स्वाभाविक है। विद्वानों से प्रार्थना है कि इसे मानव-सुलभ दोष समझते हुए क्षमा करेंगे।।

-अनुवादक

सकलशास्त्रारविन्दप्रद्योतनभट्टाचार्येण

पद्मनाभ-मिश्रेण विरचिता

वीरभद्रदेव-चम्पूः

प्रथम उच्छ्वासः

नियतरुधिरपानारक्तदन्ताग्ररोचि-
र्दलितदनुजराज-प्रौढदर्प्यान्धकारः।
सृजतु दशदिगन्तस्थापिनिष्कीर्तिमल्ली-[1]
स्त्रिपुरहरपुरन्ध्रीभैरवी भैरवो वः ।।१।।

अथ च-

हित्वा तातगिरा स्वराज्यपदवीं गत्वा द्रुतं दण्डका-
रण्यान्तः खरदूषणत्रिशिरसां छित्वा शिरांस्यादरात्।
हत्वा बालिदशाननौ तदनुजं राज्येभिषिच्याचिरा-
दायातःश्रितपुष्पको निजपुरं सीतासमेतो हरिः ।।२।।

नियमतः रुधिरपान से ईषत् रक्त दांतों के अग्रभाग की प्रभा वाले तथा दानवराज के दलन से अति गम्भीर दर्पयोग्य अन्धकार उत्पन्न करने वाले भैरव रूप में शिव तथा दसों दिशाओं में स्थापित अपकीर्ति को मिटाने वाली, त्रिपुर के विनाशक की स्त्री भैरवी रूप में पार्वती हमारा सृजन करे ।।१।।

और भी-

पिता के आदेशवचन से स्वराज्य की पदवी को छोड़कर, शीघ्र ही दण्डकारण्य के मध्य में जाकर, खर, दूषण तथा त्रिशिरस् का सहज ही वध करके, बालि तथा दस सिर वाले रावण को मारकर, उसके छोटे भाई विभीषण का राज्याभिषेक करके शीघ्र ही हरि सीता के साथ पुष्पक विमान के द्वारा अपने नगर अयोध्या को आये।।२।।

---

१. डा. रा. लो. अग्निहोत्री जी ने 'दश दिगन्तस्थायिनी कीर्तिमल्ली' यह पाठ सुझाया है। तब इसका अर्थ होगा- 'दसों दिशाओं में रहने वाली कीर्ति बनाने में निपुण।'

अथ कदाचन प्रत्यर्थिपार्थिवसार्थकदर्थनासार्थकमनोरथस्य निरस्तगणनार्थिव्रातकृतार्थीकरणाल्पीकृतकल्पतरुयशसःविरोधिवधूमानसोदञ्चदानन्दसन्दोहकुमुदचण्डमहसः श्रीमतो रामचन्द्रदेवस्य तनूजन्मनः श्रीवीरभद्रदेवस्य यात्रायां कटकोत्थिता धूलीरालोक्य मन्दोदरी विभीषणस्य लंकाधिपतेरंकनिविष्टापि सातंकमाह- प्रिय! किमिदमाकस्मिकं दिक्चक्रवालमाक्रम्य भूलोकादुत्थितं व्योमान्तरालमावृणोति नूनम्।

विन्ध्याद्रिरद्यावधि सन्निरुध्य स्वात्मानमभ्यर्थनया महर्षेः।
सम्प्रत्यवज्ञाय कुतोपि हेतोर्भूयः समुत्तिष्ठति सम्भ्रमेण।।३।।

आक्रम्याशावकाशान्निखिलखगतीरंहसासन्निरुध्य
ज्योतिःप्रच्छाद्य भानोरतिविपुलजगत्क्रोडविश्रान्तभानोः।
वायोराच्छिद्य यात्राः सकलतनुभृतां चक्षुराकृष्य दूराद्
भूयोप्यावृत्य भूमीतलमखिलमसावम्बरं संवृणोति।।४।।

एक बार शत्रु राजाओं के दल के विनाश की उचित इच्छा वाले, अगणनीय याचकों के समूह को कृतार्थ करने के द्वारा कल्पतरु के यश को कम कर देने वाले, विरोधियों की वधुओं के मन में उठने वाले आनन्दरूपी पुष्प के लिए प्रचण्ड उष्णता वाले श्रीमान् रामचन्द्रदेव (बघेल) के पुत्र श्री वीरभद्रदेव की यात्रा में सेना से उठती हुई धूल को देखकर मन्दोदरी लंका के अधिपति विभीषण की गोद में बैठकर भी डर से बोली- प्रिय! यह कौन सी वस्तु अकस्मात् ही भूलोक से उठकर समूची दिशाओं को व्याप्त करके निश्चय ही आसमान के कोने-कोने को ढक रही है।

विन्ध्य पर्वत आज तक महर्षि (अगस्त्य) के आदेश से अपने को उठने से रोककर इस समय उनकी अवज्ञा करके क्यों तेजी से ऊँचे की ओर उठने लगा है।।३।।

सभी दिशाओं के अवकाश को व्याप्त करके, सम्पूर्ण पक्षियों के विचरण को हठात् रोककर, अत्यन्त विस्तृत जगत् की गोद में विश्राम लेने वाले सूर्य की ज्योति को रोककर, वायु की यात्रा को रोककर, समस्त प्राणियों की आंखों को दूर से ही अपनी ओर खींचकर, भूमितल को और भी अधिक ढककर सम्पूर्ण आकाश में छा रहा है।।४।।

यदि वा केनापि भूमण्डलचक्रवर्तिना प्रतापसूरेर्पितस्य कृशानोः प्रावृट्प्रभावासारिता।

नीलाकाकोलभाया दिनकरदुहितुर्निम्नगायाः कराला

संग्रामक्षोणिपृष्ठप्रतिभटनिकटाकृष्टखड्गप्रभायाः।

प्रावृट्प्रारब्धवृष्टिप्रसरदुरुजलक्षालित-व्योमकान्ति

प्रायादिक्चक्रवालं कवलयतितरां वारिणा धूमयष्टिः।।५।।

विभीषणः- प्रिये नैवम् अपितु-

ग्रीष्माहस्करतापतस्करनिजप्रौढप्रतापोष्मभिः

शुष्कायां प्रतिपक्षभूपतिभुवि प्रावृष्यपि प्रायशः।

घाटीधावदसंख्यसैन्धवखुरव्राताभिघातैरिमा

भूमीनायकरामचन्द्रतनयेनोत्थापिता धूलयः।।६।।

मन्दोदरी- (सत्रासं) प्रिय प्रिय! सत्वरं प्रेष्यन्तामुपहारान्नो चिदेषः-

---

अथवा किसी भूमण्डल के चक्रवर्ती राजा के द्वारा अपने प्रताप रूपी सूर्य में वर्तमान अग्नि से वर्षा की प्रभा खींच लायी गयी।

काले कालोल अर्थात् पहाड़ी कौवे की कान्ति वाले, संग्राम की क्षोणि अर्थात् धरती की पीठ पर प्रत्येक सैनिक द्वारा खींची गई समीपवर्ती तलवार की कान्ति वाले सूर्यपुत्री यमुना नदी के जल से वर्षा के दिन में शुरू हुई बारिश के अत्यधिक जल से धोए गये आसमान की कान्ति वाली भयंकर धूमयष्टि पूरी दिशा को ग्रस रही है।।५।।

विभीषण- प्रिये! ऐसा नहीं है। अपितु-

ग्रीष्म के सूर्य के ताप को चुराने वाली अपनी प्रौढ़ प्रताप रूपी उष्मा के द्वारा वर्षा में भी शत्रुओं की प्रायः सूखी जमीन पर तथा पर्वत पर असंख्य घोड़ों के खुरसमूह की टाप के द्वारा, धरती के नायक रामचन्द्र के पुत्र के द्वारा यह धूल उठायी गयी है।।६।।

मन्दोदरी- (डरते हुए) प्रिय प्रिय! आप जल्दी से उपहार भेज दीजिए। नहीं तो यह-

दौड़ते हुए करोड़ों घोड़ों के टाप से दलित धरती से उठने वाली धूल के

धावद्घोटककोटिद्विपदलितैर्भूचक्रधूलीभरै-

बद्ध्वा सेतुमिहापरं जलनिधावावृत्य लंकापुरीम् ।

स्फूर्जत्कार्मुकनिः सरच्छरशतैश्छित्वा शिरो विद्विषाम्

संग्रामांगणदेवताः प्रतिबली नामाशु सन्धास्यति ।।७।।

विभीषण - प्रिये!यद्यप्यमुख्यापि

अयोध्या नगरी नित्यं प्रतिपन्ना निशाचरैः ।

तथापि रामचन्द्रोऽयं दशाननभिदः परः।।८।।

मन्दोदरी- किमस्यापि वीर! भानोरन्वयः?

विभीषणः- तन्वि! वीरभानोर्न तु भानोः।

मन्दोदरी-कान्त! किं भास्वतश्चन्द्रमसश्च परम्परातः सन्त्यन्येपि राजानः?

विभीषणः- प्रिये!

वंशेऽप्राप्तपराभवो भगवतः क्षत्रद्रुहो भार्गवा-

दाज्ञायां विबुधोपमो विजयते राज्ञां बघेलाभिधः ।

द्वारा समुद्र में दूसरा पुल बनाकर लंकापुरी को घेरकर, उछलते हुए धनुषों से निकलते हुए सैकड़ों बाणों से शत्रुओं के सिर को काटकर, संग्राम रूपी आँगन के देवता प्रतिद्वंद्वी शत्रुओं के प्रति अपने बाणों का सन्धान करेगा ।।७।।

विभीषण- यद्यपि यह गौण

अयोध्या (अर्थात् न जीती जा सकने के कारण अन्वर्थतः लंका नगरी) नित्य ही निशाचर राक्षसों से घिरी है। फिर भी यह रामचन्द्र (बघेल) रावण विजेता से भी श्रेष्ठ है ।।८।।

मन्दोदरी- वीर! क्या इसका भी भानु अर्थात् सूर्य का वंश-सम्बन्ध है।

विभीषण- तन्वि! यह भानु का नहीं, अपितु वीरभानु के (वंश वाला है)।

मन्दोदरी- प्रिय! क्या परम्परा से सूर्य तथा चन्द्र वंश वाले अन्य राजा भी हैं।

विभीषण- प्रिये! क्षत्रियों का विनाश करने वाले भार्गव या परशुराम की

शक्त्या स्कन्द इव श्रिया स्मर इव ख्यात्या विवस्वानिव

स्फीत्या शक्र इवात्र राजति सदा श्रीरामचन्द्रो नृपः ।।९।।

अपि च-

स्वकान्ति-पूरातिशयाय शम्भुरमुष्यकीर्तेरमुतोधिकायाः।

जग्राह भस्मानि कलामनेकां गंगाभुजंगाधिपतिं वृषं च ।।१०।।

किं च-

सहजधवलमच्छं भालबालेन्दुयोगा-

दपि च विमलकान्तिः स्वर्धुनीवारिपूरैः।

निजवपुरमृताभं निर्जितं यस्य कीर्त्या

धवलयति नितान्तं भस्मना भूतनाथः ।।११।।

अपरं च-

आज्ञा में रहने वाला, देवता की उपमा वाला, अपने वंश में कभी पराजय को प्राप्त न करने वाला, राजाओं में बघेल उपाधि वाला यह राजा विजय को प्राप्त करता है। शक्ति से स्कन्द या कार्तिकेय के समान, श्री से स्मर या कामदेव के समान, प्रसिद्धि से सूर्य के समान, परिवृद्धि से शक्र या इन्द्र के समान यह श्री रामचन्द्र राजा विराजित होता है।।९।।

और भी-

शम्भु ने उसकी कीर्ति से भी अधिक कीर्ति हेतु अपने शरीर की कान्ति की अभिवृद्धि के लिए भस्म को, (चन्द्र की) अनेक कलाओं को, गंगा को, सर्पों के अधिपति शेषनाग को तथा बैल को ग्रहण किया ।।१०।।

और भी-

जो अपने मस्तक पर बाल चन्द्रमा के योग से सहज ही धवल तथा स्वच्छ हैं तथा जो गंगा के जल के प्रवाह से निर्मल कान्ति वाले हैं, जिनकी कीर्ति से अमृत के समान आभा वाला शरीर जीत लिया गया है- ऐसे शिव अपनी भस्म से (जगत् को) नितान्त पवित्र करते हैं ।।११।।

और भी-

तीनों रामों के मध्य जो शत्रुओं की स्त्रियों की चोटी पकड़ने में व्याकुल

रामेषु त्रिषु वैरिवर्गरमणीवेणीग्रहव्याकुलः

तं केचित् कथयन्ति तत्र च मतेर्नास्माकमत्यादरः।

राजन्यान् द्विषतो निहन्ति कुरुते निर्दूषणां मेदिनी-

मन्याकर्षति भानुजामवितथप्रौढप्रभावो यतः।।१२।।

मन्दोदरी- हरभालानलाधिकज्वालप्रतापमार्तण्डतापितारातिराजन्यावरोधवधूपगीयमानयशसोऽस्य का राजधानी?

विभीषणः-

अस्ति प्रशस्तिभिरलंकृतदिग्विभागा राजानुरक्तमनुजा नगरी गहोरा।

यस्यां मदालसगजालिकपोलपालि लोलालिविभ्रमगजाःपरितः स्फुरन्ति।।३।।

या पर्वतैर्वसुमतीव वृता समन्ता-

दम्भोजिनीवधृतवल्गुशिलीमुखा च।

राकेव सद्द्विजपतिः करिणां घटेव

दानावदानचरितप्रथिता विभाति।१४।।

है, उसके प्रति कुछ लोग कहते हैं कि हमें उसके प्रति अधिक आदर नहीं है। हमें तो जो द्वेषी राजाओं को मारता है, धरती को दूषण से विहीन करता है, सूर्यपुत्री यमुना को अपनी ओर खींचता है (उस रामचन्द्र बघेल के प्रति आदर है) क्योंकि उसका प्रभाव स्पष्टतः प्रौढ़ है।।१२।।

मन्दोदरी- शिव के मस्तक में (स्थित आंखों की) अग्नि से अधिक लपट वाले, प्रताप रूपी सूर्य से तपायी गयी राजाओं के अन्तःपुर की स्त्रियों के द्वारा जिसका यश गाया गया है, ऐसे इस रामचन्द्र की राजधानी कौन है?

विभीषण- प्रशस्तियों से अलंकृत दिशाओं वाली, राजा पर अनुरक्त मनुष्यों वाली गहोरा नगरी है। यहां पर मदजल से आलसी हाथियों के कपोल पर घूमने वाले चंचल भौंरो के द्वारा घबड़ाये हुए हाथी चारों तरफ घूमते हैं।।१३।।

जो पर्वतों से धरती के समान (पर्वतों से) चारों ओर से घिरी हुई है। जो कमलिनियों पर बैठे हुए सुन्दर भौंरो वाली है। पूनम की रात्रि के समान सुन्दर चन्द्र वाली है। हाथियों की घटा के समान है। दान प्रदान के चरित से प्रसिद्ध होकर

कादम्बिनीव दलिताखिललोकतापा

कात्यायनीव रिपुवर्गभयानभिज्ञा।

या पूर्वपर्वतशिखेव करावदात-

मित्रोदयप्रणयिनी सततं विभाति।।१५।।

सास्य पाण्डवार्पितखाण्डवदावानलप्रबलप्रतापस्य राजधानी।

मन्दोदरी- किमसौ सम्प्रति तत्रैव तिष्ठति?

विभीषणः- अस्ति किल सुमेरुरिव सुवर्णाश्रयो, हिमाचल इव परतेजोभिरसन्तापितो, मन्दर इवाहितानेकवाहिनीनाथः, पूर्वाचल इव भास्वद्भूः, पश्चिमाद्रिरिवार्पितपरतेजोस्तमयः, कैलास इव सन्निहितचन्द्रचूडो, मलय इव भोगिकुलावलम्बनं, विन्ध्य इवानेकवारणः, कल्पतरुरिव सन्तुष्टाश्रयः, नारायण

शोभितहोतीहै।।१४।।

जो बादलों की पंक्ति के समान सम्पूर्ण लोक के ताप का विनाश करने वाली है। पार्वती के समान शत्रुओं से भय का अनुभव न करने वाली है। जो पूर्वाचल या पूर्व दिशा के पर्वत के शिखर के समान (सूर्य की) किरणों से पवित्र है, जो मित्रों को उन्नति से प्रसन्न करने वाली है। ऐसी (गहोरा राजधानी) सदा सुशोभित होती है।।१५।।

यही पाण्डवों को दी गई खाण्डव की दावाग्नि के समान प्रबल प्रताप वाले की राजधानी है।

मन्दोदरी- क्या यह रामचन्द्र बघेल इस समय वहीं (गहोरा में) रहते हैं?

विभीषण- इसके अधिकार में एक दुर्गरत्न बान्धव नामक है। यह सुमेरु के समान सुवर्ण अर्थात् सोने का आश्रय है। बान्धव दुर्ग पक्ष में- सुन्दर रंग का आश्रय है। हिमाचल के समान अन्य तेज-सूर्य आदि से सन्तापित नहीं है। बान्धव दुर्ग पक्ष में- अन्य शत्रु आदि के तेज से सन्तापित नहीं है। मन्दराचल के समान अनेक वाहिनीनाथ अर्थात् नदियों वाला है। बान्धव दुर्ग पक्ष में- अनेक सेनाओं वाला वाला है। पूर्वाचल के समान प्रदीप्त सूर्य की धरती वाला, पश्चिमाचल के समान दूसरे अर्थात् अग्नि को अपना तेज देने वाला है। (सन्ध्या के समय सूर्य अपना तेज अग्नि को समर्पित कर देता है यह मान्यता है।) बान्धव दुर्ग पक्ष में- दूसरे अर्थात् सेना को अपना तेज देने वाला है। कैलास

इव वनमालावेष्टितः। तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः। कस्माच्चिन्निमित्तात् साम्प्रतं तमधितिष्ठति। पन्था हि नीतिविदां प्रभूणां यत्प्रतिपक्षास्तमयसमयप्रतीक्षया दुर्गमेवाश्रयन्ते। तथाहि-

चाणूरं चूर्णयित्वा दलितकुवलयापीडमूर्धा निहत्य

द्राक् कंसं घातयित्वा यदुभिरिह परैः कांश्चिदन्यान् द्विषश्च।

सन्त्रस्तो मागधेशादिव विपुल-बलात् संगरोद्दामकीर्तिस्-

त्यक्त्वा स्वां राजधानीं सुतनुसुमथुरां द्वारकामाप कृष्णः।।१६।।

गुप्तां संकर्षणाद्यैरतिविषयतया निर्मितां विश्वकर्त्रा

भर्ता शैवालिनीनां दिशि विदिशि वृतां लोललोलैस्तरंगैः।

गोप्ता शक्रस्य भेत्ता दितितनयहृदो वारणत्राणकर्ता

हित्वा जन्मस्थलीं स्वामभजत तरसा द्वारकां यादवेन्द्रः।।१७।।

के समान चन्द्रचूड अर्थात् चन्द्रशिखा वाले शिव को अपने में रखने वाला है। बान्धव दुर्ग पक्ष में- चन्द्र किरण को अपने में रखने वाला है। मलय पर्वत के समान भोगी अर्थात् सांपों के कुल का आश्रय है। बान्धव दुर्ग पक्ष में- भोगी अर्थात् उपभोक्ता लोगों के कुल आश्रय है। विन्ध्य पर्वत के समान अनेक हाथियों वाला है। कल्पतरु के समान सन्तुष्टों को आश्रय देने वाला है। नारायण के समान वनमाला से युक्त है। बान्धव दुर्ग पक्ष में- वन की माला या पंक्ति या समूह से घिरा हुआ है। यह इस समय किसी कारण वहीं अवस्थिति रखता है। नीति जानने वाले राजाओं का यही मार्ग है कि वे प्रतिपक्ष शत्रु के अस्त समय की प्रतीक्षा में दुर्ग का ही सहारा लेते हैं। जैसे कि-

चाणूर नामक असुर को चूर्ण करके, सम्पीड़ित कुवलयापीड नामक हाथी के मस्तक को काटकर, शीघ्र ही कंस को मारकर तथा अन्य यदुओं के साथ कुछ अन्य द्वेषी शत्रुओं को मारकर युद्ध में प्रबल कीर्ति वाले श्रीकृष्ण मानों विपुल सेना वाले मागधेश या जरासन्ध से डरकर अपनी छोटी राजधानी मथुरा को छोड़कर द्वारका में पहुँच गये थे।।१६।।

नदियों के परिपालक, संरक्षक, इन्द्र के भेदक, दिति के पुत्र के भी पुत्र प्रह्लाद को हाथी से त्राण दिलाने वाले यादव श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भी संकर्षण या

सुमुखि! सोयं वाहिनीपतिरप्यजडाश्रयः, कलावानप्यप्रसक्तकलंकः, भास्वानपि दोषागमापराभूतः, दूरीकृतबकवृत्तिरप्यघास्पृष्टः, उग्रोप्यनघः कृतवृषः, रामचन्द्रोप्यननुचर-विभीषणः, अयोध्यायाः पुरोधिपतिरपि विश्वामित्राप्रियः, सांगदसुग्रीवसैनिकोप्यदृष्ट-दूषणः, स्वानुचरसुमित्रात्मजतिरस्कृतप्रतिपक्ष-पन्नोपिन स्वपक्षविभीषणहर्षहेतुः, शासनानुरतसभरत-शत्रुघ्नोपि न मेघनाद-विषादभूः, प्रतिहतभक्तजनप्रतिकूलदुर्दशाननोपि न बहुविद्रावणकृतापकारः, सरोजकान्तवदननिर्जितताराधिपतिरपि न लंकाभर्तृनिग्रहख्यातः,

---

बलराम से संरक्षित, विश्वकर्ता द्वारा अनेक सुदृश्य पदार्थों से सुनिर्मित, दिशाओं उपदिशाओं में चंचल तरंगों से आवृत अपनी मथुरा को छोड़कर द्वारका का सेवन करतेथे।१७।।

(इसके आगे विरोधाभास अलंकार है। श्लेष से अन्य अर्थ करने पर उसका समाधान होता है)- सुमुखि! यह वाहिनीपति अर्थात् नदियों का पति समुद्र होकर भी जड़ या जल का आश्रय नहीं है- यह विरोध। समाधान पक्ष में वाहिनीपति का अर्थ- 'सेनापति । कला वाला चन्द्रमा होकर भी कलंक से रहित है- यह विरोध' समाधान पक्ष में- कलावान्= अनेक संगीत आदि कलाओं से परिपूर्ण। सूर्य होकर भी दोषा अर्थात् रात्रि के आगम से विजित नहीं- यह विरोध। समाधान पक्ष में- किसी भी दोष से नहीं हराया गया है। बकवृत्ति अर्थात् बगुले के समान नीची नजर या विनय से दूर रहने पर भी पाप से असंस्पृष्ट- यह विरोध। समाधान पक्ष में- बकवृत्ति अर्थात् मिथ्या विनय या दम्भ से दूर था। उग्र होकर भी पाप से विरहित तथा महान् शक्तिशाली था। रामचन्द्र (रघुकुल शिरोमणि) होकर भी विभीषण सेवक वाला नहीं था- यह विरोध। समाधान पक्ष में- रामचन्द्र बघेल न तो लंकाधिपति विभीषण को, न ही भयंकर सेवकों को अपने पास रखता था। अयोध्या नगरी का अधिपति होकर भी विश्वामित्र का प्रिय नहीं था- यह विरोध। समाधान पक्ष में- अयोध्या अर्थात् न जीती जा सकने वाली गहोरा नगरी का अधिपति होने पर भी विश्व के अमित्र अर्थात् शत्रुओं का प्रिय नहीं था। अंगद, सुग्रीव आदि सैनिकों वाला होने पर भी दूषण राक्षस से रहित था- यह विरोध। समाधान-कंकण तथा सुन्दर गर्दन वाले सैनिकों के रहते किसी भी दोष से अलग था। अपने अनुचर तथा सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण के द्वारा तिरस्कृत शत्रुओं के प्रतिपक्ष या विरोध में रहकर भी अपने पक्ष में आये विभीषण के हर्ष

जगच्छिष्टविशिष्टवसिष्ठगोत्रशिक्षानुसार्यपि सागरोल्लंघनशक्तिकीर्तिरपि

भास्वदन्वयप्रसूतोप्यखण्डितकोदण्डः।

मन्दोदरी- प्रिय! कीदृशोऽस्य तनयः?

भूमीचक्रभृतोऽस्य दुग्धलहरीमुग्धा गुणश्रेणयो

नूनंहाटककूटरोचितमलस्वच्छावपुःकान्तयः।

गंगासंगतशैवशैलशिखराकारा यशोराशयो।

भास्वद्भासुरकांचनावलरुचःप्रौढाःप्रतापप्रभाः।।१८।।

का कारण नहीं था- यह विरोध। समाधान- अपने भृत्य तथा सुमित्र अर्थात् अच्छे मित्रों के पुत्रों द्वारा तिरस्कृत शत्रुओं के विरोध में रहकर भी अपने पाले में गिर गये विभीषण अर्थात् भयंकर शत्रुओं के हर्ष का कारण नहीं होता था। शासन में आज्ञानिरत भरत तथा शत्रुघ्न वाला होने पर भी मेघनाद के विषाद का कारण नहीं था- यह विरोध। समाधान- शासन में लगे भरत याने पालक, शत्रुघ्न अर्थात् शत्रुविनाशी सैनिकों के रहते हुए रामचन्द्र बघेल मेघनाद राक्षस के विनाश का कारण नहीं था। कष्ट प्राप्त भक्तजनों के प्रति प्रतिकूल दुर्दशानन (दुर्+दशानन) अर्थात् दुरित दशानन या रावण सदृश होकर भी उन्हें विद्रावण अर्थात् भगाने का अपकार नहीं करता था- यह विरोध। समाधान- कष्टप्राप्त भक्त जनों के प्रति प्रतिकूल दुर्दशानन (दुर्दशा+आनन) दुर्दशापूर्ण अर्थात् चिन्तित मुख वाला होकर भी उन्हें भगाने का कार्य नहीं करता था। कमल के समान सुन्दर मुख के साथ ताराधिपति अर्थात् तारा के अधिपति बालि को हराने वाला होकर भी लंका के पालक रावण को पकड़ने में प्रसिद्ध नहीं था- यह विरोध। समाधान- (रामचन्द्र बघेल) सुन्दर मुख से ताराधिपति अर्थात् चन्द्रमा को जीतने वाला होकर भी रावण को पकड़ने में प्रसिद्ध नहीं था। जगत् में प्रमुख ऋषि के रूप में रहने वाले वसिष्ठ से तथा विश्वामित्र के गोत्र की शिक्षा का अनुसरण करने वाला होने पर भी सागर को पार करने की शक्ति वाले के रूप में प्रसिद्ध होकर भी सूर्यकुल में उत्पन्न होकर भी (रघुकुलशिरोमणि) ने धनुष का भंग नहीं किया था- यह विरोध। समाधान- रामचन्द्र बघेल ने धनुष भंग नहीं किया था।

प्रिय! इसका पुत्र कैसा है?

इस धरती का पालन करने वाला राजा के दूध की तरंगों के समान शुभ्र

यात्रायां ननु वीरभद्रनृपतेः प्रत्यर्थिगीतस्तुते-

धावद्घोटककोटिटापदलितैर्भूचक्रधूलीभरैः ।

पंकः शंकरमूर्धनि त्रिपथगा स्यादस्य चेच्छेश्वरः

शेषःफूत्कृतिभिर्नता नयनयेद्रक्षापरोऽक्षणी मुहुः । ।१६। ।

प्रत्यर्थिपार्थिवयशांसि यशस्तदीयमावृत्य तिष्ठति सुधारसकोमलानि ।

चित्रं किमत्र मलयस्य गिरेः कठोरो यस्मात्तटीरपि पटीरतया वृणोति । ।२०। ।

प्रशस्तीरे तस्य प्रतिनृपतिदुष्कीर्तिलहरी

मसीक्षोदैः शम्भो प्रकटमभिदिग्भित्तिलिखिता ।

कराघर्षादिषा मुहुरुपचितादम्बरतले

तमस्तोमश्यामा स्फुरति रुचिरा काचन रुचिः । ।२१। ।

अपि च- आनृत्तावृतप्रवृत्तधूर्जटिजटाजूटस्खलदमन्दमन्दाकिनीप्रवाहपट लप्रक्षालिततद्बालमूलमिलिताकलंककलानिधिखण्डकरनिकराक्रान्तहिमाचल

गुण हैं, सोने के ढेर से मैल को निकाल देने पर उसके सदृश अतिस्वच्छ शरीर की शोभा है, गंगा से युक्त शिव-पर्वत के शिखर के आकार वाले यश हैं, सूर्य के समान प्रदीप्त स्वर्णसमूह की कान्ति वाली प्रताप की प्रभा है । ।१८। ।

वीरभद्र राजा की यात्रा के समय शत्रुओं के गीतों के द्वारा स्तुत दौड़ते हुए करोड़ों घोड़ों की टाप से दलित धरती की धूल से शंकर की जटा में रहने वाली गंगा पंकिल हुई, सहज ही ईश्वर शेष फूत्कारों के साथ झुक गया तथा रक्षा के लिये अपनी आंखें बार बार घुमाने लगा । ।१६। ।

उसका यश सुधारस के समान कोमल शत्रु राजाओं के यश को ढक करके बैठा है। तब यह क्या विचित्र है. कि मलय पर्वत का (पवन) कठोर बनकर तट को भी परीर अर्थात् चन्दन काष्ठ के समान ढक रहा है । ।२०। ।

हे शिव! उसके प्रशंसित स्थान पर शत्रुओं की अपकीर्ति की लहर मानों स्याही के कणों से दिशाओं रूपी दीवाल में स्पष्ट ही लिख दी गई थी। (अब) आसमान के नीचे उसके द्वारा बार-बार किये गये हाथों के आकर्षण से काले अंधकार समूह में से कोई शोभापूर्ण दीप्ति झांकने लगी है । ।२१। ।

और भी शंकर के जटाजूट में नृत्त पर्यन्त गिरने वाली वेगवती मन्दाकिनी

शिलाशकलनिपतितपुण्डरीकपाण्डुरयशोमण्डलधवलीकृताखण्डब्रह्माण्डभाण्डोदर-दरी-वर्तमानसार्थविवेकाकुल-प्राणिकुलस्तूयमानागणितगुणगणनाय पंचाधिकसंख्या-व्यावृत्तिनिर्धारणव्यावृत्तचतुर्मुखमुख-स्तोमोपगीयमान गाण्डीवसहायपाण्डवाहितखाण्डवानलज्वालाज्वालकरालप्रतापतपनसन्तप्तप्रत्य-र्थिपार्थिवावरोधप्रचारावरोधक्षमप्रस्थानसमयाभिहतनिःसाननिःस्वानप्रतिस्वानपूर्ण दिगन्तगिरिकन्दरागर्भचंक्रममाणदेवमिथुनदीयमानाशीर्वादवर्धमानकल्याणस्यास्य यशोदासूनोर्यशोदासूनोरिव यशोदानन्दानुकूल्यं प्रख्यातो कुवलयापीडकरिपीडापाटनेन सामर्थ्ये प्रसिद्धः, वृन्दावनेऽभिरुचिः, नरकाघयोर्निग्रहोद्यमः, विजयपन्नपारः, विक्रमाक्रान्तलोकतया बलिपदविद्वेषः,

---

के प्रवाह समूह से बाल से मूल तक धोया जो निष्कलंक चन्द्र खण्ड, उसकी किरण समूह से प्रतिबिम्बित जो हिमाचल का शिलाखण्ड, उस पर पड़े हुए पुण्डरीक अर्थात् श्वेतकमल के समान उसका जो यशः समूह, उससे स्वच्छ किया गया जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, उसमें रहने वाले व्याकुल प्राणियों के द्वारा स्तुति किये गये अगणित गुणों की गणना के लिए, 'पांच' इस अधिक संख्या के निवारण के लिए नष्ट किये गये (एक मुख के कारण) चार मुख वाले जो ब्रह्मा, (एक बार ब्रह्मा ने झूठ ही कह दिया कि वे शिव का अन्त जान गये। तब शिव ने उनके एक सिर को काट दिया। तब से ब्रह्मा पंचानन से चतुरानन बन गये) उन ब्रह्मा के मुख के द्वारा मन्त्रों से स्तुति किया जाने वाला तथा गाण्डीव से सहायता प्राप्त करने वाला जो पाण्डव-अर्जुन उसके द्वारा बनाई गई जो खाण्डवाग्नि उसकी ज्वाला की लपट के समान भयंकर जो उसका (वीरभद्र का) प्रताप, उसकी अग्नि से जली हुई जो शत्रु राजाओं के अन्तःपुर की स्त्रियां, उनके इधर उधर घूमने के निवारण में समर्थ जो उसका (सैन्य) प्रस्थान, उस समय बजाये गये (नगाड़े की) ध्वनि, प्रतिध्वनि से परिपूर्ण जो पहाड़ की गुफाएँ, उनमें घूमने वाले जो युगल देव, उनके द्वारा दिये गये आशीर्वाद से प्रवर्धित कल्याण वाले, यशोदा (श्रीकृष्ण की माता) के पुत्र के समान यशोदा के पुत्र, यशोदा को आनन्द देने के लिए प्रसिद्ध, कुवलंयापीड नामक हाथी के समान हाथियों को पीड़ापूर्वक फाड़ने से प्रसिद्ध सामर्थ्य वाले, वृन्दावन में अभिरुचि रखने वाले, नरक के पापों के निग्रह का उद्यम करने वाले, विजय प्राप्त करने वाले, अपने पराक्रम से सम्पूर्ण लोक को आक्रान्त करने के कारण बलि के

गोवर्धनकरावलम्बदानेन गवां रक्षणम्।

मन्दोदरी- (सभयम्) कान्त! अस्यानुनये तावद्विधीयतां यत्नः।

यावन्न घोटकघटाप्टुटापटंक
चूर्णीभवद्धरणिधूलिभिरुद्धताभिः।
आमण्डलं दिनकृतः परितस्तथाभि-
रेताभिरुद्भवति सेतुमयः पयोधिः।।२।।

विभीषणः- तन्वि! नास्य वयमुद्देश्यः। अपितु केनचिन्निमित्तेन सागवधिरेवायं यात्राविधिः।

मन्दोदरी- प्रिय! किन्तत्?

पैरों से द्वेष रखने वाले, गोवर्धन को हाथ पर उठाने से (अथवा श्लेष से-गायों के वर्धन करने के लिए हाथ का सहारा देने से) गायों की रक्षा करने वाले (वीरभद्र थे)।

मन्दोदरी- (भय सहित) प्रिय! इसकी प्रसन्नता के लिए प्रयत्न करें।

जब तक घोड़ों के समूह के जबर्दस्त टाप से चूर्ण बनने वाली धरती से उठने वाली, सूर्य के चारों ओर घिर जाने वाली इस धूल से यह समुद्र पुल के रूप में निर्मित नहीं हो जाता ।।२२।।

विभीषण- तन्वि, हम इसके उद्देश्य नहीं है। अपितु किसी कारण से सागर सीमा पर्यन्त ही यह यात्रा है।

मन्दोदरी- प्रिय! वह क्या है।

विभीषण- प्रिये! पहले एक बार राहु ने सूर्य का ग्रास किया था। तब पक्षयुक्त बाण चलाने में धुरन्धर, धनुर्धारी लोगों में इन्द्रसदृश, युद्ध की सीमा तक हाथों को पकड़ लेने वाले, समुद्र की सीमा पर्यन्त सूर्य के तेज को धारण करने वाले परन्तु अन्यों की उष्मा का विनाश करने वाले प्राणियों का हरण करने वाले, अन्य पुरस्थ प्राणियों को वश में करने में कामदेव, हिरनियों के समान आँखों वाली स्त्रियों के लिए भूमि प्रदान करने वाले, दूसरे तत्त्व की जिज्ञासा में प्रवाह के समान, याचकों के प्रति कृपा रूपी अमृत से परिपूर्ण, पृथिवी के अलंकार, शत्रुओं में इन्द्र के द्वारा भी जिसका बाण न टूट सके ऐसे राजा

विभीषण:- प्रिये!पूर्वमाचरितोराहुधाराविग्रासः पन्नधुरन्धरेधनुर्धराणांपुरन्दरे भुवः सुन्दरे, समरसीमनिगृहीतकरे, समुद्रवेलावधिदिनकरतेजोभृतां तापहृतां हरे, परपुरनिग्रहे स्मरे, मृगदृशां पुरस्कृतधरे, परतत्वजिज्ञासायां निझरिऽर्थिषु कृपासुधायाः गृहीतभरे, पृथिव्याः वरे, प्रत्यर्थिषु पुरन्दरेणाप्यच्छिन्नपक्षे भूधरे दानरसातन्द्रे कतिभिः

रथ्यानेष ममार्थिसाद्विरचयेद् दानोद्यमे वाजिनां

दद्यान्मां करिणां मुहुर्वितरणे त्रासादिति व्याकुलः।

दृष्ट्वा दर्भकरम्भवन्तमचिरादेवोपरागाच्छिदे

भानुः कर्षति मण्डलं नरपतेः स्वर्भानुरुन्मुञ्चति ।।२३।।

इति स्तुतिः कृता। तस्मिन् कलिकलुषपारुष्यमहिमप्रोन्मृष्टेषु कर्णादिषु

(वीरभद्र) के दानरस से परिपूर्ण होने पर कुछ लोगों ने-

'कहीं घोड़ों का दान करते समय यह (वीरभद्र) मुझे याचकों के हवाले न कर दे, अथवा हाथियों का दान करते समय मुझे दान न कर देवे, इस डर से व्याकुल होकर राहु (सूर्य को ग्रहण से) खोलने लगता है तथा सूर्य शीघ्र ही इस राहु को दर्भ समूह वाला देखकर (अर्थात् डरा हुआ समझकर) इस राजा के मण्डल अर्थात् भूमण्डल को खींचने लगता है'- इस प्रकार स्तुति की।

अनुशीलन- *राहु के सिर को घोड़े या हाथी के सदृश मानते हुए यह सम्भावना प्रकट की गई है। स्वयं वीरभद्र ने भी अपने ग्रन्थ कन्दर्प- चूडामणि में रामचन्द्र के दान देते समय गणेश तथा तुम्बुरू नामक गन्धर्व के प्रति ऐसी ही आशंका प्रकट की है–*

श्री रामेणारब्धे दाने गजवाजिनोर्मुखैक्येन।

वक्राननो गजपतिर्भीत्याभूत् तुम्बुरुः खचरः- कन्दर्पचूडामणि श्लोक १२

अर्थात् रामचन्द्र (बघेल) के द्वारा दान करते समय हाथी और घोड़े के मुख की समानता के कारण गणेश ने डरकर मुख टेढ़ा कर लिया तथा तुम्बुरु (नामक अश्वमुख गन्धर्व) आकाश में चला गया ।।२३।।

उस समय कलिकाल के कलुष के सामर्थ्य की महिमा से कर्ण आदि के (यश) के पोंछे जाने पर इस धरती के कल्पवृक्ष की कल्पलता के समान

भूमीकल्पतरोरस्य कल्पलतयेव गद्यपद्यहृद्यवाग्विलासविलसद् सद्विद्वद्वृन्द मनोरथावितथीभावक्षमतया, ऽवनिचिन्तामणेरस्यैव कान्तिसुखमयेव निःसीमकुमुदाविर्भावकल्पतया, सुधाकरस्य तस्यैव ज्योत्स्नयेव प्रचुरतरातिविमलकमलोल्लासपटुतया, कराक्रान्तदिङ्मण्डलतया विष्णुपदानुसरणपरतया आशापरिपूरककरतया, भास्करस्यास्यैव प्रलयेव दोषावस्थानविरोधितया, भास्वत्कान्तिशालितया, दिनस्यास्यैव तदुचितश्रियेव दुःसहतेजोवत्तया, हुतभुजोऽस्यैव शिखयेव स्वाहयेव वा उग्रतया परपुरदाहकतया, महादेवस्यास्यैव गिरिजयेव प्रत्यर्थिपूतनाकसमर्थतया, नारायणस्यास्यैव महालक्ष्म्येव श्रितकमलतया, धातुरस्यैव सरस्वत्येव खण्डितविपक्षभूभृदपक्षतया, शतक्रतोरस्यैव शच्येव परिजनया च गंगयेव पद्मासंकोचकारितया; दोर्दण्डचण्डिमचमत्कारखण्डितारातिमुण्डमण्डितसमर-महीमण्डलस्यापर्यायोदितद्वादशविधतपनप्रौढतरप्रतापतापितानेकविरोधिराजावरोध युगपत्पाणितलाभिहतवक्षस्तटोत्थितस्वनपराभूतझञ्झाप्रभञ्जनजवोज्वालदावा नलान्तरालनिपतितवेणुनिवहचटचटारावस्य अमन्दतरमन्दराभिघातस्फुरदुरुतरंगक्षीरनि

माता यशोदा (आगे के सभी तृतीयान्त शब्द माता यशोदा के विशेषण है), गद्य, पद्य तथा हृदय को प्रिय लगने वाले वाणी के विलास से संयुक्त जो विद्वानों के समूह उनके मनोरथ को पूर्ण सत्य करने के सामर्थ्य वाली (माता यशोदा), इस धरती के चिन्तामणि नामक रत्न की सुखमयता तथा कान्तिपूर्णता के समान असंख्य कुमुद या पुष्पों के आविर्भाव के सामर्थ्य वाली, उस चन्द्रमा की चाँदनी के समान अत्यधिक अति पवित्र कमलों को विकसित करने में पटुता वाली, अपने हाथ की शक्ति को दिशाओं में व्याप्त करने के कारण (उस शक्ति के) विष्णुपद अर्थात् अन्तरिक्ष का अनुसरण करने के कारण सभी दिशाओं को अपनी इस शक्ति से भर देने वाली (माता यशोदा); इस सूर्य की रात्रि में अवस्थिति की विरोधिता के समान सूर्य के समान कान्ति वाली, इस दिन के अनुकूल श्री या शोभा के समान, दुसःह तेज वाली, इस अग्नि की लपट या स्वाहाकार के समान उग्रता के कारण अन्य पुर के दहन के सामर्थ्य वाली, इस महादेव या शंकर की पत्नी गिरिजा या पार्वती के समान शत्रुओं को पवित्र स्वर्ग में पहुँचाने के सामर्थ्य वाली, इस नारायण या विष्णु की पत्नी महालक्ष्मी के समान कमल का आश्रय लेने वाली, इस ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती के समान

धिनिःसरदुच्चैःश्रवःकान्तिपूरपाण्डुरयशोभरसलिलविकाशमञ्जरीभवदखण्डब्रह्माण्डम-
डपस्य श्री वीरभद्रदेवस्याम्बया यशोदया कतिचित् करटिनः समुत्सृष्टा यानुद्दिश्य कविरिति पपाठ-

राकायां सकलं विधाय कठिनीपिण्डं सुधांशुच्छला-
दारभ्य प्रथमां कलां कमलभूरस्या गुणानां मुहुः।

खण्डित किये गये विपक्षी-राजाओं का पक्ष न लेने वाली, इस शतक्रतुं या इन्द्र की पत्नी शची के समान तथा परिजनों सहित गंगा (पद्मा की स्नुषा या पुत्रवधू) के समान पद्मा या विष्णुपत्नी लक्ष्मी (जैसे बड़े लोगों के सामने) संकोच करने वाली माता यशोदा।

(आगे षष्ठी विभक्ति वाले शब्द वीरभद्रदेव के विशेषण हैं।) अपनी बाहु के प्रचण्ड चमत्कार से खंडित जो अराति या शत्रु, उनके मुण्ड से मण्डित जो समर-मही या युद्धभूमि का चारों ओर का भाग, उसमें निरन्तर उत्पन्न होने वाला जो बारहों प्रकार की अग्नि के समान अतिप्रौढ प्रताप, उससे तपी हुई अनेक राजाओं के अन्तःपुर की स्त्रियाँ, उनके एक साथ छाती पर हाथ पीटने से उत्पन्न जो आवाज- ऐसी आवाज जिसने तूफान के वेग से उत्पन्न लपट वाली दावाग्नि में गिरे हुए बांसों के समूह से निकली चटचट की आवाज को भी दबा दिया है- इस प्रकार की भयंकर ध्वनि को उत्पन्न कराने के सामर्थ्य वाला जो वीरभद्र, अत्यन्त प्रबल मन्दराचल के अभिघात से निकलने वाली जो विशाल तरंगें, इस प्रकार की तरंगों वाला जो क्षीरसागर, उसमें से निकलने वाला जो 'उच्चैःश्रवा' अथवा इन्द्र का घोड़ा, उसकी कान्ति को भरने वाला जो स्वच्छ यश उससे मंजरी के रूप में व्याप्त होने वाला जो अखण्ड ब्रह्माण्ड उस ब्रह्माण्ड के लिए मण्डप या उसकी छाया के समान जो वीरभद्र उनकी (उपरिलिखित विशेषणों वाली) माता यशोदा ने कुछ करटी अर्थात् हाथी भेजे, जिनको उद्देश्य करके कवि ने इस प्रकार कहा-

ब्रह्मा ने राका अथवा पूर्णिमा की अधिष्ठात्री देवी में चन्द्रमा के बहाने सकल कठिन पिण्ड बनाकर पुनः इसकी प्रथम कला से इसके (यशोदा के) गुणों को बार-बार गिनना प्रारम्भ किया। उसके पश्चात् कृष्ण पक्ष में बढ़ते हुए तारों के बहाने उसके गुणों की गणना करते रहे। यदि ऐसा न होता तो आकाश में कभी भी चन्द्रमा का क्षय तथा क्रमशः तारों की वृद्धि न होती। (अर्थात्

तारणां मिषतस्तनोति गणनारेखा नभस्यन्यथा

न स्यादिन्दुपरिक्षयो न च भवेत्ताराविवृद्धिः क्रमात् ।।२४।।

अपि च- यस्या गुणानुपलभ्याकर्णितेररुन्धतीगुणे ऽपि विश्वासो लोकानाम्।

मन्दोदरी-प्रिय! नैतावता सन्दर्भेण यात्रानिमित्तमभिहितम्। नूनं तवापि चेतस्त्रासपराभूतम्। यतोऽन्यस्मिन्नभिधेयेऽन्याभिधानमिति।

विभीषणः- प्रिये! नान्यदभिहितं, परमर्धोक्ते इदमभिधीयते।

मन्दोदरी-व्याकुलायामनुचिताभिधानं, क्षम्यतां, समाप्यतामभिधेयमिति।

विभीषणः- तेषु मध्ये केचित् गजा ब्राह्मणेभ्यो न दत्ताः,

कृष्ण पक्ष में क्रमशः चन्द्रमा का क्षय मूलतः उसके गुणों की गणना के लिए ही है।)।२४।।

और भी- जिसके (यशोदा के) गुणों को न जान कर ही लोगों को अरुन्धती के गुणों (की अधिकता) पर विश्वास हो पाता है।

मन्दोदरी- प्रिय! इस पूरे प्रबन्ध से आपने यात्रा का कारण तो कहा ही नहीं। लगता है आपका भी चित्त डर से पराभूत हो गया है। क्योंकि अन्य कहने के प्रसंग में अन्य का अभिधान कर रहे हैं।

विभीषण- प्रिये! हमने तुमसे अन्य बात नहीं कही। अपितु बीच में यह बात कही गई है।

मन्दोदरी- व्याकुल होने से मैं अनुचित बोली, क्षमा कीजिये, अपना कथन पूरा कीजिये।

विभीषण- उनके बीच में कुछ हाथी ब्राह्मणों को नहीं दिये गये। उन दण्ड न पाए गये लोगों को दण्ड देने के लिये यह उद्योग है। (अर्थात् माता यशोदा ने जिन हाथियों का दान करने के लिए भेजा था, उनमें से कुछ हाथियों का दान जिन्होंने नहीं किया, उन्हें दण्ड देने के लिए वीरभद्र का यह सैन्य अभियान है।)

मन्दोदरी- यह उपक्रम वर्षा के पश्चात् क्यों नहीं किया गया।

विभीषण- ज्योतिषियों ने आश्विन मास के पूर्णचन्द्र को पर्व बताया था।

तानदण्डप्राप्तान् दातुमयमुद्योगः।

मन्दोदरी- किमिति न प्रावृडनन्तरमयमुपक्रमः?

विभीषणः- गणकैरिदानीमाश्विन्यां चन्द्रपर्वविदितम्।

मन्दोदरी - किन्ततः?

विभीषणः- (सस्मितम्) अहो स्त्रीणां विलक्षण एवं मुग्धस्वभावो यदनया चतुर्दशविद्यावैदग्ध्यभाजो दशकन्धरस्य गेहिन्याऽद्यावधि नैतावानपि धर्मनिर्णयोऽधिगतः।

(प्रकाशम्) प्रिये! देवगुरोर्बृहस्पतेः प्राप्तप्रायोऽयमागमनसमयः। स एवागत्य तवामुं धर्मसंशयं छेत्स्यति।

दौवारिकः- वीरातंकसंकुचन्मुखपंकेरुहामररमणीगणानुध्यातप्रतापप्रभाव पराभूतसुराधिनाथसुरपुरोहितो द्वारि तिष्ठति ।

मन्दोदरी- इससे क्या?

विभीषण- (मुस्कुराकर) ओः स्त्रियों का यह विलक्षण मुग्ध स्वभाव होता है। चौदह विद्याओं में विद्वत्ता प्राप्त करने वाले दश मुख वाले रावण की पत्नी के द्वारा आज तक धर्म निर्णय नहीं समझा गया।

(बोलकर) प्रिये! देवगुरु बृहस्पति के आगमन का समय होने ही वाला है। वही आकर तुम्हारे इस धर्मसंशय का विच्छेद करेंगे।

द्वारपाल-- वीर! वीरभद्र के आतंक से संकुचित मुख वाली जो अमर या इन्द्र की रमणी या स्त्रियाँ, उनके द्वारा याद किया गया जो (वीरभद्र का) प्रताप प्रभाव उससे दबने वाले सुराधिनाथ देवताओं के पुरोहित बृहस्पति द्वार पर खड़े हैं।

विभीषण- उन अखिल विद्या के समुद्र के कर्णधार को शीघ्र प्रवेश कराओ।

द्वारपाल- बृहस्पति! आपको वे बुलाते हैं।

(बृहस्पति प्रवेश करते हैं)

विभीषण--देवगुरो! आपको नमस्कार।

(मन्दोदरी भी वैसे ही प्रणाम करती है।)

बृहस्पति-- हे वीर विभीषण! इस पतली कमर वाली के साथ निर्भय होकर लंका का पालन करो।

विभीषणः- प्रवेशय सत्वरं तमखिलविद्यासरिद्धीशकर्णधारम्।

दौवारिकः- आकारयति बृहस्पतेऽत्र भवन्तं भवन्तम्।

(बृहस्पतिः प्रविशति)

विभीषणः - देवगुरो! तुभ्यं नमः।

(मन्दोदरी च तथैव प्रणमति)

बृहस्पतिः- पालय वीर! विभीषण! सहानया तनुमध्यया निरातंको लंकाम्।

(तत उपक्लृप्त आसनमुपविशति)

विभीषणः- (अभ्यर्च्य) बृहस्पते! किमपि ते स्नुषेयं पृच्छति।

बृहस्पतिः- पृच्छ्यताम्।

मन्दोदरी - देवगुरो! पूर्वसंकल्पितस्योपरागोल्लंघने का व्यवस्था। धर्मव्यवस्थायां तु त्वमेवाभिज्ञः।

बृहस्पतिः- देवि! पूर्ववासरे सदसि सह सुरसमूहैरासीनस्य सुरेशितुः

(पश्चात् नियत आसन पर बैठते हैं।)

विभीषण-- (पूजा करके) बृहस्पते! आपकी पुत्रवधू कुछ पूछना चाहती है।

बृहस्पति--पूछिये।

मन्दोदरी-- देवगुरो! पहले से सुनिश्चित कार्यक्रम के उल्लंघन में क्या प्रमाण है। धर्मव्यवस्था के तो आप ही जानकार हैं।

बृहस्पति-- देवि! पिछले दिनों सभा में देवताओं के समूह के साथ बैठे हुए इन्द्र को कादम्बिनी दिखाई पड़ी। यज्ञ करने वालों में मुख्य इस इन्द्र को उसके देखने के प्रति साभिलाष समझ कर उन कवियों में आद्य कवि ने यह पढ़ा--

आम के जंगलों में तथा कमलखण्डों पर मधु और माधव अर्थात् वसन्त की लीला की रचना करने के पश्चात् अब ये मेघ अपने रस से कमल के समान सुन्दर आँखों वाली स्त्रियों के हृदयों में रस का उद्बोधन कर रहे हैं।।२५।।

अत्यन्त चञ्चल, आसमान की वायु से तथा उदार प्रकाश देने वाली

कादम्बिनी नयनसीमानमाससाद। तदीक्षणे च साभिलाषं मखभुजां मुख्यं

प्रेक्ष्य कवीनामाद्येन कविनेदं पठितम्-

लीलां विधाय मधुमाधवयोः क्रमेण

कामं रसालविपिनेषु तथाम्बुजेषु।

अम्भोजसुन्दरदृशां हृदयेषु सुप्त-

मुद्बोधयन्ति रसितैरिह वारिवाहाः।।२५।।

सन्तप्तमन्तरपि सन्तमुदारभासा

मेणीदृशां दिनकरस्य करैःकठोरैः।

भालानलैरतिचलैरिव भूतभर्तुः

सिञ्चन्ति पञ्चमशरमम्बुभिरम्बुवाहाः।।२६।।

द्विजे सम्प्रत्युच्चैः कथयति मयूरे परभृतां

रुते गीते नृत्ते स्फुरति ननु शंका मृगदृशाम्।

पयःपूर्णाःकृत्वा मरकतघटी वारिदघटा

दिगीशां साम्राज्ये ससृजुरभिषेकं स्मृतिभुवः।।२७।।

बृहस्पतिः-

अत्रान्तरावसरविस्मृतिभूः समेत्य

विद्युच्छटारुचिरशीकरवारिवाहैः।

आकृष्य कार्मुकमपातभृता बलेन

सूर्य की कठोर किरणों से हरिणियों के समान आँखों वाली, पूर्वपतियों की स्त्रियों के हृदय को सन्तप्त करने के पश्चात् अब मेघ अपने जलों से (कामदेव के) पाँचवें बाण से उन्हें सींच रहे हैं।।२६।।

द्विज अर्थात् अण्डज पक्षी मोर के आवाज करने पर तथा कोयल के बोलने, गाने, नाचने पर हिरणियों जैसी आँखों वाली स्त्रियों को प्रतीत हुआ कि मेघ की घटा मरकत की घटी को जल से भरकर दिशाओं की अधिष्ठात्री देवता के साम्राज्य में कामदेव का अभिषेक करने लगी है।।२७।।

बृहस्पति- इस अवसर पर कामदेव ने उपस्थित होकर विद्युत् की छटा से शोभित जल बिन्दु वाले मेघों के द्वारा धनुष को खींच कर बलपूर्वक बाण से

तदनन्तरमुर्वशीनिर्वर्तितसपर्यासगर्वामेनकानिर्मितमान्यतामनोहरां, रम्भासम्भृत सम्भावना सकक्षां, घृताचीसाचिव्यरुचिरां, सुकेशीकृतकेशप्रसाधनां, तिलोत्तमाकल्पिताकल्पललितां, मंजुघोषाकथ्यमानकथाभिमुख्यकृतकर्णां, सीमानमिव सौन्दर्यस्य, साम्राज्यमिव स्मृतिभुवः, आकारमिव रमणीरमणीयतायाः, प्रागल्भ्यमिव श्रृंगारस्यागारमिव गुणणस्य, प्रादुर्भावमिव सुषमायाः, मूलमिव मानस्य, स्थलमिव सौभाग्यस्य, बिम्बमिव प्रतिबिम्बीभवदपररमणीयरमणीनां,राकामिवेन्दुमुखीं, हरिवक्षस्थलीमिव श्रिया विभक्तां, गौरीमिव शंकरतनुं ब्रह्मणो मनोवृत्तिमिव वाणीविलासपरां, पूर्वाचलशिखामिवभास्वत्करमनोहरां,महाकविगिरमिवतुलाकोटिरुचिरपदन्यासां, प्रखरतराध्यापकशालामिव रसनारावमनोज्ञमध्यां, विन्ध्यस्थलीमिव परवारणगताभिरामांशचीमालोकयितुमुत्सुकमनाःशुनासीरःप्रह्वीभावेन ब्रह्माणम् उपनिषदनुरुद्धया स्तुत्योपेन्द्रं, गौरवगर्भया गिरीशं, माननया मां, इंगितेनाग्निं,

---

वृत्रहा अर्थात् इन्द्र के मर्म को बींध दिया ।।२८।।

इसके पश्चात् उर्वशी नामक अप्सरा द्वारा सम्पादित सेवा के कारण गर्वशालिनी शची, (इसके पश्चात् सभी द्वितीयान्त उपवाक्य इन्द्रपत्नी शची के विशेषण हैं।) मेनका नामक अप्सरा द्वारा निर्मित मान्यता के कारण मनोहर, रम्भा नामक अप्सरा द्वारा निर्मित सम्भावना अर्थात् सम्मान के कारण उसके समकक्ष, घृताची नामक अप्सरा के सान्निध्य से सुशोभित, सुकेशी नामक अप्सरा द्वारा जिसके केश बाँधे गए हैं ऐसी शची, तिलोत्तमा नामक अप्सरा द्वारा सुन्दर प्रसाधन के कारण सुन्दर, मंजुघोषा नामक अप्सरा द्वारा कही गई कहानी के सामने कान लगाने वाली, सौन्दर्य की सीमा के समान-शची, कामदेव के साम्राज्य के समान, स्त्री के सौन्दर्य के साक्षात् आकार के समान, सुषमा की उत्पत्ति-स्थान के समान, सम्मान के मूल के समान, सौभाग्य के स्थान के समान, अन्य सभी सुन्दर स्त्रियों में प्रतिबिम्बित होने वाले बिम्ब के समान, (अर्थात् सभी सुन्दर स्त्रियों में उसका ही सौन्दर्य प्रतिबिम्बित था) राका या पूर्णिमा की अधिष्ठात्री देवी के समान चन्द्रमुखी, हरि या विष्णु की वक्षस्थली के समान श्री से सम्पन्न, गौरी के समान शंकर या शान्तिदायक शरीर वाली, ब्रह्मा की मनोवृत्ति के समान वाणी विलास को धारण करने वाली, पूर्वाचल की चोटी के समान सूर्य की किरणों से म्मनोहर, शची पक्ष में-- प्रदीप्त हाथों से सुन्दर, महाकवि की वाणी के

विवक्षया वैवस्वतं, नियोगेन निर्ऋतिं, वाचा वरुणं, वाग्व्यापारेण वायुं, करलीलया कुबेरम्, ईहया ईशानं, नत्या नागनायकं, विनयेन विवस्वन्तं, वदनशीतलेन शीलेन चन्द्रमसम्, अन्यांश्च विसर्ज्य सुहृत्करक मलार्पितपाणिसरसीरुहोऽनुकुर्वन् ऐरावणगतिमन्तःपुरं प्रविवेश। तत्र च पूर्ववदनुत्सुकां शचीमभिवीक्ष्य सहस्राक्ष इदमाह - देवि! कस्मान्न सरससरसीरुहप्रान्तशीतलेन नयनांचलेन पुरेव स्मरदवदहनदह्यमानं मामाकलयसि।

शची-

प्रबलमथनवेल्लन्मन्दराघातघूर्णज

जलधिवलयवीची घर्घराराव घोरः।

ध्वनिरयमतिवारः कर्णयोर्भूरिकालं

हरति मम हि चेतो देववंशावतंस।।२६।।

समान उपमा के अनेक सुन्दर पद या शब्दों के विन्यास वाली, शची पक्ष में-- तुलाकोटि अर्थात् नूपुर के द्वारा सुन्दर पद या पैरों के विन्यास वाली, अत्यन्त प्रखर अध्यापक शाला के समान वेदवाणी की ध्वनि से सुन्दर मध्यभाग वाली, शची पक्ष में-- रशना अर्थात् करधनी की आवाज से सुन्दर कमर वाली, विन्ध्यस्थली के समान उत्कृष्ट वारण अर्थात् हाथियों की चहलकदमी से सुन्दर, शची पक्ष में- वारण अर्थात् प्रतिबन्ध से भिन्न अर्थात् अप्रतिबन्धित गति से सुन्दर, शची को देखने की इच्छा से उत्सुक मन वाले शुनासीर अर्थात् इन्द्र ने नम्रता से ब्रह्मा को, 'विसर्ज्य' अर्थात् बिदा करके-- (इसका आगे सभी द्वितीयान्त शब्दों के साथ सम्बन्ध है।), उपनिषत् सहित स्तुति के द्वारा उपेन्द्र को बिदा करके, गौरवपूर्ण वाणी से गिरीश या शिव को, सम्मान के साथ मुझको (बृहस्पति को), संकेत से अग्नि को, कुछ कहने की इच्छा से वैवस्वत को, आदेश से निर्ऋति को, वाणी से वरुण को, बातचीत से वायु को, हाथ हिलाकर कुबेर को, इच्छा से ईशान को, प्रणामपूर्वक नागनायक शेष को, नम्रता से विवस्वान् को, चेहरे के समान शीतल शील से चन्द्रमा को तथा अन्यों को भी बिदा करके अपने मित्र के करकमल में अपना पाणिकमल रखने का अनुकरण करते हुए ऐरावत अर्थात् इन्द्र के हाथी की गति से अन्तःपुर में प्रवेश किया। वहाँ पर पहले से ही अनुल्लसित शची को देखकर हजार आँखों वाले इन्द्र बोले-- देवि! तुम सरस

देव! अनेन श्रुतिपथमुपागतेन पारिजातहरणे ऐरावतस्कन्धसमारूढं त्वामुद्गृष्ठपृष्ठनिष्ठं दृष्ट्वा विष्टरश्रवसानाक्रमणीयस्य गरुडस्य त्वदीयगण्डस्थलयोः पक्षपुटाघातनिर्घातः स्मारितः। पूर्व हि तदाकर्णितेनोपेन्द्रेण सह वैनतेयाधिरूढायाः सत्यभामायाः स्पर्धया त्वदीयपश्चाद्भागे गजगरिष्ठनिष्ठाया मम या दशाऽऽसीत् सा प्रत्यक्षैव तावदेव बहिरवस्थिते त्वयि कस्यांचित् कनकाचलशिलायां कुलिशाभिघाताभ्यासशंकया निश्शंका मन्मनोवृत्तिरासीत्। इदानींतु सदर्पदानवदोर्द्वयास्फोटप्रतिभटेनामुना श्रूयमाणेन शंकायां निमग्ना गौरिव पंकेनात्मानमासादयति।

न तावदसौ निस्वनिःसमयसमागमसोत्साहना जलमुचाम्। ते हि-

कमल के कोर के समान शीतल अपनी आँखों से मुझ कामाग्नि से जलने वाले को क्यों नहीं प्रसन्न करती हो।

शची-- हे देववंश के भूषण! अत्यन्त प्रबल घूमती हुई मथानी रूपी मन्दराचल के आघात से घूमते हुए समुद्र के वलय तथा तरंगों की घर्घर आवाज के समान अतिभयंकर ध्वनि बहुत समय से मेरे कानों में पड़ कर मेरे मन को हर रही है।२६।।

देव! इस ध्वनि के कानों में पड़ने से पारिजातहरण के समय ऐरावत या अपने हाथी के कन्धे या उसकी मजबूत पीठ पर बैठे हुए तुमको देखकर विष्टरश्रवस् अर्थात् चहुँ ओर प्रसिद्ध श्रीकृष्ण के द्वारा भी आक्रमण के अयोग्य गरुड़ का तुम्हारे गालों पर अपनी चोंच से प्रहार करना याद आ गया। पहले एक बार इस घटना को सुनने वाले उपेन्द्र के साथ वैनतेय या गरुड़ पर बैठी हुई सत्यभामा की स्पर्धा करने पर तुम्हारे पीछे हाथी की मजबूत पीठ पर बैठी हुई मेरी जो दशा हुई थी, वह तुम्हारे बाहर आ जाने पर (निर्मूल हो गई थी।) उस समय स्वर्णपर्वत की शिला पर तुम्हारे वज्राघात के अभ्यास को सोचकर मेरी मनोवृत्ति निश्शंक हुई थी। इस समय तो भयंकर ध्वनि को सुनने से मेरा मन वैसे ही शंका में फँस रहा है जैसे कोई गाय कीचड़ में धँस रही हो।

अनुशीलन-- *पुराणों के अनुसार एक बार श्रीकृष्ण सत्यभामा नामक अपनी पटरानी के लिये स्वर्ग का पारिजात लाने के लिये वहाँ गए थे। वहाँ उन्होंने गरुड़ के साथ इन्द्र से युद्ध किया था। उस समय गरुड़ ने चोंच मारकर इन्द्र को घायल कर दिया था। इस प्रकार इन्द्र तथा उसके हाथी को परास्त करके*

सिञ्चन्तः कल्पवृक्षस्खलदनिलचलैः शीकरैरंगमंगं

बिभ्राणा हेमभासं सरसिजनयना जातकम्पाश्चशंपाः ।

मन्दं मन्दं स्वनन्तः सुरशिखरिशिखागोचरीभूय भूयो

भूयस्त्वत्प्रेमपात्रत्रिदशमृगदृशां काममुद्दीपयन्ति। ।३०। ।

न चास्मदनुकूलोऽयमाहृतवेददैतेयदलनोद्यमस्वीकृतमीनावतार दशावतार पुच्छच्छटाप्रक्षेपक्षुब्धस्य जलनिधेः ।

तेनापि हि-

पुच्छक्षेपसमुच्छलज्जलनिधि स्तोत्रक्रियाप्रस्फुरद्

वक्तृस्तोमविधिप्रणाशित सुरव्रातारिकल्पावधि ।

कैलासप्रतिमेन मीनवपुषा मध्यं विगाह्याम्बुधे-

र्दैवाधीश्वर पूर्वमेव निहतो वेदापहर्ताऽसुरः । ।३१। ।

गरुड़ अपने पराक्रम से श्रीकृष्ण तथा सत्यभामा को द्वारका ले आए थे। विस्तार के लिये देखें– भागवत १०-६५, १-२२-२५।

यह असमय में ही आने वाले उत्साहपूर्ण मेघों की भी ध्वनि नहीं है। वे तो–

(ये मेघ) हिलते हुए कल्पवृक्षों के साथ चलने वाली वायु से चञ्चल छोटी-२ बूँदों से अंग-अंग को सींचते हुए, आन्दोलित कमलनयन् स्त्रियों को सोने का आभास उत्पन्न करते हुए, धीरे-२ आवाज करते हुए, बार-२ देवताओं के पर्वत शिखर से दिखते हुए, तुम्हारी प्रेमपात्र स्वर्ग की हिरणियों के समान आँख वाली स्त्रियों में काम उत्पन्न कर रहे हैं । ।३०। ।

यह वेदों को चुराने वाले दैतेय का दलन करने के लिये, हमारे लिये अभिमत उद्यम करने वाले, दशावतारों में से एक मीनावतार को स्वीकार करने वाले (प्रजापति) की पूँछ को गिराने से विक्षुब्ध समुद्र की भी (आवाज) नहीं है। उन्होंने तो–

अपनी पूँछ के प्रक्षेपण से हिलने वाले समुद्र में स्तोत्र पाठ से हिलने वाले वेदपाठियों की क्रिया से जब तक देवताओं के शत्रुओं का विनाश नहीं हो गया, उस समय तक, हे देवाधीश्वर ! आप समुद्र में घुस कर, कैलास जैसे

नाप्यतिकठोरतरादिकमठपृष्ठे स्थितये प्रथमं निपततो भूगोलस्याभिघात-जन्मायं निर्घातः। यतः-

साकं शेषमहोरगेण गिरिभिः सार्धं सहाशाबलैः

साहित्येन महोदधेः सहतया कल्पद्रुमादेरपि।

स्वेच्छामात्रसहाय एष भगवान् कूर्मावतारो हरिः

पृष्ठे स्वस्य निविष्टमेव निखिलं चक्रे भुवोर्मण्डलम् ।। ३२।।

नापि हिरण्याक्षपरिगृहीतभू चक्रपरित्राण सोत्साहस्यादिवराहस्यायं घुर्घुररवः।सहि-

---

आकार वाली मछली के शरीर के द्वारा (कार्य करते रहे।) इस प्रकार वेदों का अपहरण करने वाला वह असुर तो पहले ही मार डाला गया।

अनुशीलन– *भागवत ८.२४ आदि के अनुसार एक बार प्रजापति ने वेदों को चुराने वाले हयग्रीव नामक राक्षस को मारने के लिये मछली का अवतार धारण किया था। उन्होंने अपनी पूँछ से समूचे समुद्र को विक्षुब्ध करके वेदों का उद्धार किया था। महाराज रघुराज सिंह जूदेव ने अपने जगन्नाथ-शतक में इसका वर्णन इस प्रकार किया है-*

भूप लिये सफरी है हरी, हनि दानव को लियो वेद उधारी।

जगन्नाथ- शतक, श्लोक ७५।

यह पहले नीचे गिरते हुए भूगोल (को बचाने हेतु) अत्यन्त कठोर कछुए की पीठ पर बैठने के लिये उस पर (भूगोल) के अभिघात से उत्पन्न निर्घात (वाली ध्वनि) भी नहीं है। क्योंकि–

शेष नामक महासर्प के साथ दिशाओं के बल से परिपूर्ण पर्वतों के साथ, महान् समुद्र के साथ तथा कल्पवृक्ष इत्यादि के साथ केवल स्वेच्छा की सहायता वाले कूर्मावतार-धारी भगवान् हरि ने अपनी पीठ पर सब कुछ रखते हुए ही सम्पूर्ण भूमण्डल का निर्माण कर लिया था ।।३२।।

हिरण्याक्ष द्वारा पकड़े गए भूमण्डल को बचाने के लिये उत्साह सम्पन्न आदिवराह का भी यह घुर्घुर शब्द नहीं है, उन्होंने तो–

क्रोधपूर्ण पैरों के प्रक्षेप से चूर्ण किये गए देवताओं के शत्रु (हिरण्याक्ष) पर नचाते हुए मस्तक वाले, भूमि में प्रसन्न होकर उत्साह वाले, देवताओं के

सक्रोधांघ्रिनिपातचूर्णितसुरारातिस्फुरन्मस्तको

दंष्ट्राग्रे विनिधाय भूमिमुदितोत्साहोऽपि देवस्तुतः।

भूतावासनिसर्गदुष्करतरब्रह्माण्डभाण्डव्यय-

त्राणेनाकृत घोरघुर्घुर– रवग्रस्तावकाशा दिशः।।३३।।

नापि हिरण्यकशिपुवक्षस्तटकपाटपाटनपाटवाहितानन्दसन्दोहस्य श्रीमतो नरहरेः सिंहनादः। स हि-

कठोरैर्दम्भोलिप्रखरनखरैर्दैत्यदलनं

विधायापि स्वेच्छाकलितनरसिंहोऽभयतनुः।

भवेद्गीतालक्ष्मीरिति विजितकल्पान्तजलद-

ध्वनिग्रामांश्चक्रे न खलु निनदान् भूरिकरुणः।।३४।।

नापि-

वर्धिष्णुवामनवपुःप्रखराभिघात-

त्रासोपजातरयभानुतुरंगमानाम्।

द्वारा स्तुत (आदिवराह ने उस हिरण्याक्ष को) अपनी दाढ़ के भीतर रख कर प्राणियों के आवास के लिये, स्वभावतः दुर्लभ ब्रह्माण्ड रूपी भाण्ड को विनाश से बचाने के लिये सम्पूर्ण दिशाओं के अवकाश को अतिभयंकर घुर्घुर की आवाज से भर दिया था। अर्थात् उन्होंने पहले ही यह कार्य कर लिया था।।३३।।

यह हिरण्यकशिपु के कपाटरूपी वक्षःस्थल को फाड़ने की चतुराई में अत्यन्त आनन्द वाले श्रीमान् नरहरि का सिंहनाद भी नहीं है। वह तो-

अत्यन्त कठोर वज्र के समान प्रखर नाखूनों से दैत्य (हिरण्यकशिपु) का दलन करके भी स्वेच्छा से नरसिंह का अभय शरीर धारण करने वाले हरि ने चाहे लक्ष्मी को गाया हो या संम्पूर्ण विश्व को जीतने के कारण मेघ के समान ध्वनि की हो, पर उस सदा करुण ने कभी भी इस प्रकार का शोर नहीं किया था।।३४।।

यह भी नहीं-

बढ़ते हुए वामनावतार के शरीर के भयंकर अभिघात के त्रास से उत्पन्न प्रवाह में सूर्य के घोड़ों का सुमेरु की विस्तृत शिलाओं पर अतिकठोर टाप के

मेरोः शिलासु विपुलासु कठोरताप-

टंकप्रपातजनिरेष महान्निनादः ।।३५।।

यतः-

तेनापि दैवतभयक्षतये गृहीत-

देहेन मन्मथमनोहरविग्रहेण।

कार्यं तदेव न भवेदिह येन देव

पीडासुरासुरनतांघ्रिसरोरुहेण ।।३६।।

नापि साम्प्रतजातराजन्यकुलकण्ठपीठजामदाग्न्यकुठारसंघर्षजन्मायं निनादः। यतः-

छित्त्वा शीर्षाणि भित्त्वा हृदयमुरुभुजस्तम्भमुत्पाट्य मूलाद्

भंक्त्वोरू चूर्णयित्वा हनुमतनुतराञ्जानुजंघादिकांश्च ।

टंकन से उत्पन्न यह महान् शब्द (भी नहीं है।)

अनुशीलन- *विष्णु ने अपना एक पग सूर्यलोक में स्थापित किया था। जैसा कि वेद में कहा है कि यहां सूर्यलोक में विष्णु का परमपद सुशोभित होता है (अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभाति भूरि ऋग्वेद १.१५४.६)। इसी भावना को आधार बनाकर प्रस्तुत श्लोक कहा गया है। ।।३५।।*

क्योंकि -

देवताओं के भय के निवारण के लिये देहधारण करने वाले कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाले, सुर, असुरों के द्वारा प्रणत चरणकमलों वाले (उस वामन हरि ने) केवल वही किया, जिससे देवताओं को पीड़ा न हो ।।३६।।

यह इस समय उत्पन्न क्षत्रिय के कुलों के कण्ठ को पीठ की ओर कर देने वाले अर्थात् मारने वाले जमदग्नि वंश में उत्पन्न परशुराम के कुठार के संघर्ष से उत्पन्न भी यह ध्वनि नहीं है। क्योंकि -

जिसने पहले क्षत्रियों के सिरों का छेदन करके, हृदय, भुजस्तम्भ को जड़ से उखाड़ कर, घुटना, जंघा आदि को स्पष्ट ही चूर्ण करके पहले धरती के ब्राह्मणों का राज्याभिषेक किया था, वह जमदग्नि के पुत्र परशुराम भी पितरों की अनुपम (विधि) से शान्ति में स्थापित कर दिये गये है। ।।३७।।

यः पूर्वं क्षत्रियाणामकृत वसुमतीचक्रराज्याभिषेकं

विप्राणां सोऽपि शान्तौ पितृभिरनुपमैः स्थापितो जामदग्न्यः ।।३७।।

नाप्यवशिष्टलंकानिविष्टराक्षससरोषस्य रघुपतेर्विघटितसेतु- घंटनोद्यमे शिलासंघट्टजन्माऽसौ ध्वनिः।

यानप्राप्तरणांगणानविलसच्छत्रान्निबद्धाञ्जलीन्

क्लीबादीन् शरणागतान्न हतवान् रोषे प्रवृत्तोऽपि सः।

शान्ते स्वे महिमन्यवस्थितिजुषो नीलाम्बुवाहत्विषस्

तानुद्दिश्य जगत्पतेर्रघुपतेःकोपोदयःकीदृशः।।३८।।

नापि क्रीडाकृष्टकालिन्दीप्रवाहस्य शेषावतारस्य रौहिणेयस्य कौरवकृत शान्त्यावरोधाहितप्रभूतकोपोद्भूतभूचक्रचरणाघातनिर्घातोऽयम्।यतः-

प्रागेवोद्धृत्य भूमीभरमसुरचमूचारिणश्चूर्णयित्वा

कृत्वा क्रीडास्तटेषु ग्रहपतिदुहितुर्बल्लवीभिः समेत्य।

लंका में रहने वाले बचे हुए राक्षसों के प्रति कुपित रघुपति श्रीराम के द्वारा टूटे हुए पुल को जोड़ने के प्रयत्न में पत्थरों को इकट्ठा करने से उत्पन्न भी यह ध्वनि नहीं है।

जिसने रोष में होकर भी, युद्धभूमि में न आने वाले, छत्रधारण न करने वाले, अंजलि बांधने वाले, नपुंसक तथा शरण में आए लोगों को नहीं मारा उन श्याम मेघ के समान दीप्ति वाले, जगत्पति रघुपति श्रीराम का, शान्ति महिमा में अवस्थिति हो जाने पर कोप का उदय किस प्रकार हो सकता है ।।३८।।

खेल खेल में यमुना के प्रवाह को खींच लेने वाले, शेष के अवतार, (श्रीकृष्ण तथा) रोहिणी के पुत्र बलराम का, कौरवों के द्वारा शान्ति में अवरोध डालने पर उत्पन्न भयंकर क्रोध से होने वाला धरती पर चरण का आघात या निर्घात भी यह नहीं है। क्योंकि-

वह (श्रीकृष्ण) तो पहले ही भूमीभर अर्थात् (गोवर्धन) पर्वत को उठाकर असुरों की सेना में घूमने वाले (सैनिकों) को चूर्ण करके, (यमुना के) तटों पर ग्रहपति की पुत्री गोपियों के साथ क्रीड़ा करके तथा उनके अधररूपी मधु, सुधा, रूपी वारुणी के बार २ पान से पवित्र होकर अब वे शेषनाग के रूप में सम्पूर्ण धरती के बिम्ब को अपने सिर से उठा रहे हैं। ।।३९।।

पायं पायं च तासामधरमधुसुधावारुणीपानपूतो

निःशेषं भूमिबिम्बं कलयति शिरसा शेषनागात्मना सः ।।३९।।

बुद्धस्य तु प्रबुद्धशान्तरसोदन्वन्तं निर्व्याजमवगाहमानस्य न सम्भवन्त्येव परपीडापटवो व्यापाराः। यतः एष हि चरणविन्यासपराभूतः कदापि भूतवर्गः स्यादितीवाश्रितपद्मासनः, निःश्वासवेगेन कश्चिदुद्धूयेतेति शंकयेव निरुद्धप्राणानिलः, सच्चिदानन्दमये स्वात्मनि निहितमनोवृत्तिः, दर्शनादेवान्यस्य शान्तिपदां मूर्तिमवलम्ब्य वर्तमानो-

हिंसारिरिंसा विरता भवन्तु सन्तोस्तु सन्तोषरतं मनो वः।

हत्यादिहिंसाश्रुतिबोधितानि कर्माणि दोषज्ञतयेऽनुशास्ति।।४०।।

अपि च -दैतेयपराभवाभिप्रायवशात्तत्प्रणीतमिथ्यागमग्रहणतत्पराणां नास्तिकानामपि नास्ति कदाचन परद्रोहाभिरुचिः, क्व पुनस्तस्य रजस्तमोपराभूत-सत्त्वस्वीकृतवपुषः।तेऽपि हि-

पठन्तु बुद्धागममेव शास्त्रं कुर्वन्त्वहिंसाभिमुखं मनश्च।

धर्मेष्वहिंसेव परं प्रधानं शास्त्रेषु बुद्धागम एवमाहुः ।।४१।।

प्रबुद्ध शान्त रस के समुद्र में बिना बहाने के अवगाहन करने वाले बुद्ध के, दूसरों को कष्ट देनें वाले व्यापार हो ही नहीं सकते। क्योंकि - इसने तो कोई प्राणी चरणविन्यास से पराजित न हो जाय, मानो इसीलिये पद्मासन धारण कर लिया है, निःश्वास वेग से कोई उड़ न जाय, मानो इसीलिये प्राणवायु को रोक लिया है। इसने सच्चिदानन्दमय आत्मा में अपनी मनोवृत्ति को लगाया है। अन्य के दर्शन मात्र से शान्त-मूर्ति का अवलम्बन करके वर्तमान है।

सभी हिंसा कार्यों से विरत हों, हमारा मन सन्तोष में निरत हो। श्रुति बोधित हिंसा कार्यों को वह दोष को जानने वाले के रूप में अनुशासित करता है।४०।।

साथ ही - दैतेय के पराभव के अभिप्राय से उनके (बुद्ध आदि के) द्वारा बनाए गये मिथ्या आगम शास्त्र को ग्रहण करने में तत्पर नास्तिकों को भी परद्रोह में अभिरुचि नहीं है। रजस् और तमस् को पराजित करके सत्त्व को स्वीकृत करने वाले शरीरधारी लोगों का तो कहना ही क्या। वे भी-

नापि यवनस्कन्धपीठपाटनप्रवृत्तकल्किकृपाणाहतिसमुद्भूतोऽयं निःस्वनः। यतः-

प्रान्ते कलेवरनिपातयतोऽवलेप-
भाजो विधाय यवनांस्तरसा परासून्।
इन्दोः कलामिव तमः प्रशमप्रसक्तां
संवर्धयिष्यति मुहुः सुकृतक्रियां सः।।४२।।

तन्नूनमीश्वराराधनया भूयः प्राप्तसहस्रसंख्यदोर्दण्डाहितद्विगुणदर्प्यस्य :बाणासुरस्यायमप्रशान्तसमररसस्यामरावतीद्वारियुगपत्क्रियमाणोबाहुपरिघास्फोटः।। स हि पूर्वमप्यस्मदीयपूर्वपुरुषस्येयमित्यमरावतीप्रभुत्वस्पृहापरवशो व्याकुलामेव मनोवृत्तिं चकार। भीतस्तु चक्रपाणेरुपेन्द्रान्न यतमानो बभूव। साम्प्रतं तूषाहरणे तेनाहं वृषभध्वजप्रार्थनया चिराय मुक्त इति मत्वा जिघृक्षुरमरपदं त्वया सह

बुद्ध के आगमशास्त्रों को ही पढ़ें, मन को अहिंसा की ओर अभिमुख करें, धर्मों में अहिंसा तथा शास्त्रों में बुद्धागम ही परम प्रधान है - ऐसा कहते हैं ४१।।

यवनों के कन्धे तथा पीठ को फाड़ने में लगे हुए कल्की के तलवार से होने वाले आघात से उत्पन्न भी यह आवाज नहीं है। क्योंकि-

प्रान्त में आकर अवलेप या अहंकार में आए हुए यवनों को अपनी शक्ति से परासु अर्थात् निर्जीव बनाकर तथा उनके इस शरीर को गिरा कर तमः के विनाश से निर्मित होने वाली सुकृतक्रिया को चन्द्रमा की कला के समान वे बार बार बढ़ावेंगे।।४२।।

अतः निश्चय ही ईश्वर की आराधना से हजारों बाहुबल को प्राप्त करने के कारण द्विगुणित दर्प वाले, जिसमें युद्ध का रस शान्त नहीं हुआ है - इस प्रकार वाले बाणासुर का ही अमरावती के द्वार पर एक साथ किया गया बाहुपरिघ का विस्फोट है। उसने पहले ही यह (अमरावती) हमारे पूर्व पुरुषों की है - यह कहते हुए अमरावती पर प्रभुत्व की इच्छा के अधीन होकर अपनी व्याकुल मनोवृत्ति दिखाई थी। पर चक्रपाणि श्रीकृष्ण से डरकर उसे प्राप्त करने में प्रयत्नशील नहीं हुआ। अब उषा का आहरण होने पर 'मैं वृषभध्वज शिव से प्रार्थना के द्वारा सदा के लिये मुक्त हो गया' यह मानकर अमर पद पर अधिकार करने की

युद्धाय घटत इति मे मतिः । तव तु न वेद्मि गतिम् । वीर! नोपेक्षणीयोऽसौ । यतः-

प्रथमपतिगणेशस्कन्दमुख्या अमुष्य

प्रघनभुवि सहायाः सन्तु मा चैक एव।

धनुषि विदितदोष्णां द्वैरथे विवृतानां

युगपदयमखर्वः पञ्चशत्या समर्थः। ।४३ । ।

बृहस्पतिः- अहो मौग्ध्यं मृगीदृशाम्। यदसम्भाव्यमपि सम्भावयन्ति।

मन्दोदरी- जाने सत्यमेतत्। विशेषतस्तु पतित्रासोपाये।

अत्रान्तरा गुणगणाननुजस्य विष्णो-

र्गायन्नुपायनतयेव पुरोऽग्रजस्य।

इच्छा से तुम्हारे साथ युद्ध की चेष्टा कर रहा है, ऐसा मुझे लगता है। मैं तुम्हारी चाल नहीं जानती। वीर! उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि-

अनुशीलन - *उषा बाणासुर की पुत्री थी।. वह श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध पर मोहित हो गई थी। अतः उसके आहरण के लिये श्रीकृष्ण तथा बाणासुर में युद्ध हुआ था। इस पर बाणासुर को हारना पड़ा था।*

प्रजापति, गणेश तथा स्कन्द या कार्तिकेय इत्यादि जिसमें मुख्य हैं, ऐसे लोग लौहघन की युद्धभूमि पर इसके (बाणासुर के) सहायक हों या न हों, अर्थात् यह अकेला ही हो तो भी यह धनुष चलाने में अपनी भुजाओं के करतब जानने वाले पांच सौ लोगों के साथ अथवा दो रथारोहियों के एकाकी युद्ध में यह अनल्प एक साथ समर्थ है। ।४३ । ।

वृहस्पति- ओ! यह हिरनियों के समान आँख वाली स्त्रियों की मुग्धता! ये असम्भावित को भी सम्भावित कर लेती हैं।

मन्दोदरी - जानती हूँ, यह सच है। विशेषतः पति का कष्ट दूर करने में।

इस बीच धरती का निर्माण करने वाले ब्रह्मा के सुरलोक का वृत्तान्त जानते हुए (इन्द्र के) छोटे भाई. विष्णु के अनेक गुणों को उपहार के रूप में गाते हुए वीणा को बजाने में निपुण नारद मुनि (विष्णु के) बड़े भाई इन्द्र के आगे उपस्थित हुए । ।४४। ।

दृष्ट्वा भुवं कलयितुस्सुरलोकवृत्तं

वीणाविनोदनिपुणोमुनिराजगाम ।४४।।

दूरादेव तमायान्तमवलोक्य समुत्थितासनः पाकशासनोऽभ्युत्थायोपवेश्यासने समुचितया पूजया सम्पूज्योपविष्ट इदमाह-

मुने! ऽपरिज्ञातयोनिरयं ध्वनिरखिलमपि सुरलोकं विशेषतस्तु मृगीदृशस्तत्रापि सपरिकरां पुलोमदुहितरं व्याकुलयति। यतः-

सन्त्रस्तेव मृगीदृशी हिमहतेष्वम्भोजिनीपंकजं

वक्रं वायुहतेव हन्त कदलीकम्पं दधाना भृशम्।

फल्गूकृत्य मदीयमत्र कुलिशं चक्रं तथा श्रीपतेः

शंकासागरवीचिमग्नहृदया धैर्यं न साऽऽलम्बते।।४५।।

तद्वक्षस्तटप्रतिष्ठितेन विष्टरश्रवसा तेनैव सर्वज्ञेन दूरमपनेयाऽसौ शंकापिशाची।

उन्हें दूर से ही आता हुआ देखकर अपने आसन से उठने वाले पाकशासन अर्थात् इन्द्र उठकर, आसन पर बिठाकर समुचित पूजा से पूजित कर यों बोले-

मुने! जिसका उत्पत्तिस्थान नहीं ज्ञात हो पा रहा है, इस प्रकार की ध्वनि सम्पूर्ण सुरलोक को विशेषतः हिरणियों के समान आँखों वाली स्त्रियों को उनसे भी अधिक परिजनों सहित पुलोमा की पुत्री शची को व्याकुलित कर रही है।

पाला मार गए तथा इस प्रकार उल्टे पड़ गए कमल तथा कमलिनियों की भांति, केले के समान प्रकम्पित होने वाली, वायु से आहत सी डरी हुई सी यह स्त्री (शची) मेरे इस वज्र को तथा श्रीपति के चक्र को व्यर्थ समझते हुए शंकारूपी समुद्र की तरंगों में मग्न हृदय वाली होकर धैर्य प्राप्त नहीं कर पा रही है ।।४५।।

अतः (मानसपुत्र होने के कारण ब्रह्मा के) वक्ष में प्रतिष्ठित चहुँ ओर विख्यात कीर्ति वाले आप सर्वज्ञ के द्वारा ही यह शंकारूपी पिशाची दूर की जाय।

नारद - सम्पूर्ण शत्रुओं की धरती पर कामदेव के समान मुख वाला अतएव

नारदः- अस्ति किल समस्तप्रत्यर्थिमेदिनीनाथनिरन्तरनिरस्तजीवयशः सुधाकरः। करप्रतापसन्तापितनिखिलदिगन्तावस्थितभूभृन्निकरः विपक्षावरोधनयनकुमुदवनीपराभवप्रताप दिनकरश्री रामचन्द्रो भूपालः ।

इन्द्रः- कथय मुने! तस्य वदान्यताम्।

पृच्छ त्वं सुरनाथ शौर्यमथवा सौन्दर्यमन्यांस्तथा।
दाक्षिण्यादिगुणानमुष्य सरसं तेनास्तु चेतस्तव।
आकर्ण्यास्य मयोच्यमानमसकृद्दानं स चिन्तामणि-
र्विच्छायो न विभूषयेत् कुचतटीः स्वर्ग्रामवामभ्रुवाम्।।४६।।

अपि च-

यद्दानांम्बुनि पद्मकोशपदवीमालम्ब्य हस्तोऽर्थिना-
मावासो भवति श्रियः समुचितं तद्दातृताश्चेदहम्।
ब्रूयामत्र शतक्रतो सुरतरुर्मन्दाक्षमन्दीभवत्

कमल के समान यश वाला चन्द्रमा (निवास करता है । वह अन्ततः) सम्पूर्ण दिशाओं में अवस्थित राजाओं के समूह को अपनी किरणों के प्रताप से सन्तापित करने वाला है तथा विपक्षी राजाओं के अन्तःपुर की स्त्रियों के नयन रूपी कुमुदवन को पराजित करने में समर्थ प्रताप के सूर्यस्वरूप श्री रामचन्द्र (बघेल) भूपाल हैं।

इन्द्र - मुने! उनकी उदारता को कहिये।

हेसुरनाथ! तुम उसके शौर्य अथवा सौन्दर्य अथवा उसके अन्य उदारता आदि गुणों को पूछ सकते हो, उससे तुम्हारा चित्त सरस हो सकता है। पर मेरे द्वारा अनेक बार कहे गए इसके दान के वर्णन को सुनकर चिन्तामणि नामक एक विशेष रत्न (लज्जा के कारण रंगों की) छाया से विहीन होकर स्वर्ग में रहने वाली स्त्रियों के स्तनों के तट प्रान्त को विभूषित नहीं कर पाता।।४६।।

और भी-

उसके दानरूपी जल में जिस श्री का समुचित निवास होता है तथा याचकों के. कमल के सम्पुट के आकार को धारण करते हुए जिस प्रकार के हाथ (या उसकी मुद्रा) बन जाती है, उसकी दानशीलता को कहूँ तो हे शतक्रतु

पुष्यर्धिस्तनुयान्न ते मृगदृशां कर्णावतंसक्रियाः ।।४७।।

इन्द्रः- कथय तर्हि शौर्यमेव साम्प्रतम्। प्रकृतमपि तदेव।

नारदः- शतक्रतो!

तुरगराजविनिर्गतभूरजोद्भवपराभववेषपराङ्मुखैः।

तरणिरावृणुतेहृदयंकरैर्धरणिरत्नरणाभिमुखेत्वयि ।।४८।।

एकेन हन्त हृदयस्य विदारितस्य

संरोहणाय दिननाथ किमायतेथाः।

श्रीरामचन्द्रनरपालकरालखड्ग-

धाराजलेविहरतामयमेवपन्थाः ।।४६।।

इन्द्र! कल्पवृक्ष लज्जा से मन्द होकर पुष्य नक्षत्र की समृद्धि को कम कर देगा। तब तुम्हारी हरिणियों जैसी आँखों वाली स्त्रियों के कानों के आभूषण नहीं बन पावेंगे। ४७।।

इन्द्र - तो इस समय पहले उसके शौर्य का ही वर्णन कीजिये। यही इस समय प्रासंगिक भी है।

नारद - हे इन्द्र!

तुम्हारे समुज्ज्वल संग्राम-भूमि के अभिमुख आने पर विशाल घोड़ों द्वारा उठाई गई धरती की धूल के उत्थान से पराजित होकर सूर्य मुँह फेर कर अपने हाथों से हृदय को ढकने लगता है। ।४८।।

हे दिननाथ सूर्य! इस अकेले के द्वारा (तुम्हारे) हृदय को फाड़ दिये जाने के पश्चात् अब क्या दुबारा उदित होने का प्रयत्न कर रहे हो। (अच्छा यही है कि) श्री रामचन्द्र राजा की भयंकर खड्गधारा के जल में विहार करो, यही (सही) रास्ता है ।।४६।।

अनुशीलन-अन्योक्ति अलंकार का यह अति सुन्दर उदाहरण है । कहना यह है कि रामचन्द्र के द्वारा उठाई गई विशाल धूल के द्वारा सूर्य को ढक दिया गया है। अतः अब उसे अपनी शान्ति के लिये रामचन्द्र की चमचमाती हुई तलवार रूपी विस्तृत जल राशि में विहार करना चाहिये!!

भवता कृते कृपाण्याः पाणिग्रहणे रणांगणे कीर्तिः।

अञ्चितुमितोदिगन्तंकुरुतेरिपुगेहिनीसख्यम्।।५०।।

मुक्ताफलंप्रकरपाण्डुरपुण्डरीक-

पीयूषसौधधवलीभवतो नरेश!

कीर्तिं कथं सगुणकार्मुककर्मजातां

दोषाकरेण शशिना सह वर्णयामः।।५१।।

इत्यादिभिः शौर्यम्।

अव्याजयुद्धनरपालकृपाणमेव

पाणौ गृहाण यदि संगरकामुकोऽसि।

बाणं पुनः कलयति त्वयि रामचन्द्र!

त्वां काममेव कथयिष्यति वैरिवर्गः।।५२।।

इत्यादिना सौन्दर्यम्।

युद्ध के प्रांगण में आपके द्वारा कृपाणी का पाणिग्रहण कर लेने पर कीर्ति आपकी पूजा के लिये शत्रु तथा उनकी स्त्रियों की आपसी मित्रता को दूर बना रही है ।।५०।।

हे नरेश! अत्यन्त श्वेत श्वेतकमल के सदृश अमृतमय महलों से धवल बने रहने वाली आपकी मुक्ताफल सदृश गुणयुक्त धनुष से उत्पन्न होने वाली कीर्ति को दोष करने वाले चन्द्रमा के साथ कैसे वर्णित करें।।५१।।

इत्यादि से शौर्य का वर्णन किया गया।

अनुशीलन- कीर्ति को अत्यन्त स्वच्छ बताने के लिये चन्द्रमा के समान कहा जाता है। पर यहां कवि ने विरोध उपस्थित किया है कि रामचन्द्र की कीर्ति सगुण धनुष से उत्पन्न है, पर चन्द्रमा दोषाकर या दोष करने वाला है। अतः चन्द्रमा इस कीर्ति का उपमान कैसे बन सकता है। इसका समाधान यह है कि श्लेष से यहां सगुण में गुण का अर्थ धनुष की डोरी है तथा दोषाकार में दोषा का अर्थ रात्रि है।

हे रामचन्द्र! यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो बिना बहाने के युद्ध करने वाले राजाओं की तलवार को ही हाथ में ग्रहण करो। क्योंकि तुम्हारे बाण

आदाय द्विपमुन्नतं गजपतेः प्रेष्यं तुरंगद्वयं
दिल्लीभर्तुरतीव निर्मलतरं वासश्च गौडेशितुः।
एते द्वारि निवारिता नरपते सन्नीतिदौवारिकै-
रुक्तेऽसौ प्रथमं प्रवेश्य इति न प्रोक्तं क्षणं भूभुजा।।५३।।

इत्यादिभिर्दाक्षिण्यं च तस्य भूमीशितुः प्रसिद्धमेव। अनन्तरं च छादितेर्ष्यः।

पुरन्दरः- मुने कथय कथय प्रकृतम्।

नारदः- शतक्रतो! तदात्मजस्य श्रीवीरभद्रदेवस्य जैत्रयात्रायामसौ निःसाननिःस्वानः। स हि निजजनन्या सूर्योपरागे संकल्पितान् दन्तावलानाश्विन्यां

को हाथ में लेने पर तो तुमको शत्रु लोग कामदेव ही समझने लगेंगे।।५२।।

इत्यादि से सौन्दर्य का वर्णन किया गया।

अनुशीलन- *रामचन्द्र स्वयं कामदेव सदृश अति सुन्दर हैं। उनके बाण हाथ में लेने पर तो शत्रु लोग कामदेव का ही बाण समझते हुए रामचन्द्र को कामदेव के रूप में निश्चय कर लेंगे। इसलिये उन्हें बाण न लेकर तलवार को ही हाथ में रखने की सलाह दी गई है !!*

गजपति दिल्ली के राजा द्वारा प्रेषित दो घोड़े तथा विशाल हाथी तथा गौड देश के राजा के अत्यन्त निर्मल वस्त्र को लेकर आने वाले लोगों को, राजा की सही नीति जानने वाले द्वारपालों ने दरवाजे पर ही रोक दिया तथा द्वारपालों द्वारा पूछने पर 'इन्हें पहले प्रवेश कराओ' ऐसा राजा ने नहीं कहा (अर्थात् याचकों को पहले प्रवेश कराने के लिये कहा।)।।५३।।

इत्यादि से राजा की उदारता तो प्रसिद्ध ही है। आगे के अन्य गुण तो लोगों की ईर्ष्या से ढके हुए हैं।

नारद - हे इन्द्र! उन (रामचन्द्र) के पुत्र श्री वीरभद्रदेव की विजययात्रा में यह भयंकर ध्वनि है। वह सूर्योपराग के समय अपनी माता के द्वारा (दान के लिये) संकल्पित हाथियों के, (अधीन राजाओं द्वारा दान न करने की स्थिति में) आगे आश्विन में चन्द्रोपराग आ जाने के कारण उन राजाओं को दण्डपूर्वक आकृष्ट करने के लिये उद्यत है। (दान के लिये) संकल्पित वस्तु के प्रदान के उल्लंघन में दोष तो बृहस्पति बतावेंगे। शयनी एकादशी में क्षीरसमुद्र में शेषनाग

चन्द्रोपरागस्य भावित्वाद् [illegible] कर्तुं साम्प्रतं सोद्योगः। संकल्पित-स्यार्थस्योपरागोल्लंघने दोषं तु बृहस्पतिरावेदयिष्यति। मया तु शयन्यामेकादश्यां क्षीरनिधावास्तीर्य शैषं पुण्डरीकेक्षणः शयनं विधास्यतीति तत्र गम्यते।

शची- (सोत्साहम्) देव! आहूयतां सुरगुरुः। कियन्तं कालं धर्मकथया ऽऽनेतुमिच्छामि।

पुरन्दरः-(सहासम्) देवि! धर्मजिज्ञासायां प्रवृत्तायास्तव गुरोराह्वानं स्वचरितविरुद्धम्। आगमनसमयस्तु तस्य साम्प्रतम्।

दौवारिकः- देवाधिनाथ! देवगुरुर्द्वारदेशमधितिष्ठति।

इन्द्रः- (प्रत्युद्गम्य प्रवेश्य) आसनोपविष्टं पूजितम् अमुमेवार्थं पृष्टवान्।

बृहस्पतिः- देवि! तस्मिन्नवसरे मया स्वस्मृतिस्थमिदं वचनमुदाहृतम्।

संकल्पितं तु यद् द्रव्यं तत्क्षणे नोपदीयते।

अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत्।।

की शय्या को बिछाकर कमल के समान नेत्रों वाले विष्णु शयन करेंगे - इसलिये मैं तो वहीं जाऊँगा।

शची - (उत्साह सहित) देवताओं के गुरु बृहस्पति को बुलाइये। मैं कितने समय से धर्मकथा के लिये उनको लाना चाहती हूँ।

इन्द्र (हँसते हुए) देवि! धर्म - जिज्ञासा में प्रवृत्त होने वाली तुम्हारे द्वारा गुरु को बुलाना हमारे चरित के विरुद्ध है। वैसे इस समय उनके आने का समय हो ही गया है।

द्वारपाल - देवताओं के नाथ! देवगुरु बृहस्पति दरवाजे पर खड़े हैं।

इन्द्र - (वहाँ जाकर प्रवेश करा कर) आसन में उपविष्ट पूजित से यही बात पूछी।

बृहस्पति- उस समय मैंनें अपनी स्मृति में रहने वाला यह वचन कहा था- (दान करने का) संकल्पित जो द्रव्य तुरन्त न दे दिया जाय तो, एक दिन रात के बाद उसका मूल्य दुगुना हो जाता है, एक मास बाद सौ गुना, छह मास बाद हजार गुना, एक वर्ष में दस हजार गुना तथा ग्रहण में उसका मूल्य अनन्त हो जाता है।।।५४।। अर्थात् तुरन्त दान न करने पर बाद में उतना अधिक

मासे शतगुणं प्रोक्तं षण्मासेन सहस्रकम्

वर्षे शतसहस्रन्तु ग्रहणेऽनन्तमुच्यते। ।५४। ।

इत्यभिधाय सुरपुरोहितो जगाम देवभवनम् ।

मन्दोदरी- प्रिय!

दम्भोलिप्रथितप्रभावबलभिद्दोस्तम्भसम्भावितात्

तत्स्वर्लोकादुरुवैभवादपि गुणैर्गुर्वीयमुर्वी यतः ।

सत्यामुख्यधराभृतां धृतिभृतां मुख्यस्य यात्रोत्सवे

लंकेशोऽहमिवाभवद्‌ भयभर ग्रस्ता प्रियास्वापतेः। ।५५। ।

(स्वगतम्) कथमियति वियति सत्याने धूलीभरसमुत्थापिते तमस्तोमे समुन्मीलति भास्वतस्तुरंगमानां गतिः। न ह्यस्य समुत्सारणे तस्य भगवतः कराणां सामर्थ्यम्। (विचिन्त्य, प्रकाशम्)

मूल्य देना पड़ता है।)

ऐसा कहकर देवताओं के पुरोहित बृहस्पति देवभवन चले गए।

मन्दोदरी - प्रिय!

इन्द्रवज्र से विख्यात प्रभाव वाले, इन्द्र के बाहुदण्ड से सुपूजित, अत्यन्त उच्च वैभव वाले स्वर्गलोक से भी अधिक यह धरती अपने गुणों से गुर्वी बन गई। क्योंकि इसके धैर्यशाली गौण राजाओं के साथ २ मुख्य राजा (वीरभद्रदेव) की यात्रा के उत्सव के समय मेरे समान लंकेश तथा स्वर्ग के पति की प्रिया (शची) भी भय के भार से ग्रस्त हो गई थी । ।५५। ।

(अपने मन में) इतने विस्तृत आसमान में धूल से उठाए गए अन्धकार समूह के फैलने पर किस प्रकार सूर्य के घोड़ों की गति सम्भव है। इसके हटाने में तो भगवान् (सूर्य) की किरणों का समर्थ्य नहीं है। (सोच कर, जोर से बोलते हुए-)

इस राजा की यात्रा में विपुल धूल के भार से उठा हुआ अन्धकार समूह रास्ते में सूर्य के घोड़ों के रुकावटपूर्ण गति (का कारण बन सकता है।) निश्चय ही शत्रुओं के नगरों की किलेबन्दी के कार्य में समर्थ भयंकर हाथियों पर रखे हुए बांसों के अग्रभाग में (बंधे हुए) चंचल कपड़ों (झण्डों) के द्वारा इसे हटाया

यात्रायां नृपतेरमुष्य विपुलैर्धूलीभरैरुद्गतो

रथ्यानांपथि भास्करस्य तिमिरस्तोमो विरोधीगतेः।

नूनं वैरिपुरावरोधघटनाप्रोत्तालदन्तावल-

स्कन्धाधिष्ठितवेणुमूर्धचपलैर्वासोभिरुत्सार्यते।।५६।।

(पुनः स्वगतम्) का व्यवस्था एतावति कटकभरे फणिपतेः। (प्रकाशम्)

एतत् सैन्यभराद् भुजंगमभुवो भर्तुर्भवदुःसहा

नूनं काचन दुर्दशाऽतिविषमा रक्षोबलाधीश्वर!

न स्याच्चेत् कुलिशाग्रनिष्ठुरखुर व्रातावघातस्फुरद्

धूलीधोरणिनिर्गमैरपचितो भारो धराया गुरुः।।५७।।

विभीषणः- प्रिये! कियदेतत्। यतः-

प्रस्थानेऽस्य बघेलभूतलपतेः प्रौढाभिघातोच्छलन्-

निःसान ध्वनिभिर्निरन्तरतया व्याप्ते जगन्मण्डपे।

क्षुभ्यन्त्यम्बुधयः स्खलन्ति गिरयस्त्रस्यन्ति वैरिव्रजाः

कूर्मः कुन्थति कम्पते फणिपतिर्भ्रश्यन्ति दिक्कुञ्जराः।।५८।।

जा रहा है ।।।५६।।

(पुनः मन में) इस कठिनाई में शेषनाग की क्या दशा होगी। (जोर से बोलते हुए)

हे राक्षसबल के अधीश्वर ! इस सैन्य के व्यापार से भुजंगमों के पालक शेषनाग की निश्चय ही क्रोई दुःसह, अतिविषम दुर्दशा हो रही होगी। यदि वज्र के अग्रभाग जैसे कठोर (घोड़ों के) खुरों के प्रहार से उठने वाली धूल के इकट्ठे होने से धरती का भार गुरु न हो गया हो। ।।५७।।

विभीषण - प्रिये! यह क्या। क्योंकि-

इस बघेल नरेश के प्रस्थान के समय (घोड़ों के) प्रौढ़ अभिघात से उठती हुई भयंकर ध्वनि से जगत्रूपी मण्डप के पूरी तरह निरन्तर भर जाने पर समुद्र क्षुभित हो रहे है, पहाड़ टूट रहे है, वैरियों के समूह डर रहे हैं, कछुआ घबड़ा रहा है, शेषनाग काँप रहा है, विशाल हाथी गिर रहे हैं ।।५८।।

स्वस्ति श्रीमद् बघेलावतंसमहाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रदेवात्मज श्रीयशोदानन्दन युवराज श्री वीरभद्रदेव-चरिते मिश्र श्री बलभद्रात्मज-विजयश्री- गर्भसम्भव सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य श्री पद्मनाभविरचिते प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ।।

❑

बघेल वंश के भूषण महाराजाधिराज श्री रामचन्द्रदेव के पुत्र श्री यशोदा के पुत्र युवराज श्री वीरभद्रदेव चरित का श्री बलभद्र मिश्र के पुत्र विजयश्री से उत्पन्न सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतनभट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचित प्रथम उच्छ्वास समाप्त हुआ।

द्वितीय उच्छ्वासः

मन्दोदरी- प्रिय-

व्याकर्णाकृष्टमौर्वीप्रहितशरशताघातनिर्यातजीव

प्रत्यर्थिव्रातकान्तास्तुतसमरजयप्राप्तदुष्प्रापकीर्तेः।

यात्रायामस्य यूनस्तुरगखुरपुटाघातनिर्यत्ननिर्यद्

धूलीरालोक्यदेशे प्रतिधरणिभुजां विप्लवःकीदृगासीत्।।१।।

अपि च--

पक्षच्छेदप्रसक्तत्रिदशपरिवृढास्तम्भदोस्तम्भमुक्त

स्फूर्जद्दम्भोलिवेगाभिहतगिरितटोदारनिर्घातघोरः।

यात्रायामस्य यूनः प्रतिनृपतिवधूगीतकीर्तेरजस्रं

स्वानो निःसानजन्मा रिपुधरणिभुजां कर्णयोःकीदृगासीत्।।२।।

विभीषणः- कान्ते!

मन्दोदरी - प्रिय-

कान तक खींची गई डोरी वाले धनुष से फेंके गये सैकड़ों बाणों के आघात से कष्ट प्राप्त जो शत्रुगण उनकी स्त्रियों के द्वारा युद्ध में विजय की स्तुति से प्राप्त सर्वथा दुर्लभ कीर्ति वाले इस युवक (वीरभद्र) की यात्रा में घोड़ों के खुर के अग्रभाग के द्वारा किये गए आघात से उठने वाली धूल को देखकर शत्रु राजाओं को कैसा डर हुआ था। ।१।

और भी-

शत्रु राजाओं की स्त्रियों के द्वारा निरन्तर गाई गई कीर्ति वाले इस युवक (वीरभद्र) की यात्रा में बाणों को काटने में लगे हुए देवताओं के समान (वीरभद्र) के मजबूत बाहुदण्डों के द्वारा छोड़े गए कांपते हुए वज्र के वेग वाले बाणों से आहत पहाड़ों के टूटने से होने वाली अतिभयंकर ध्वनि तथा प्रतिध्वनि शत्रु राजाओं के कानों को कैसी लगी थी। ।२।

विभीषण - प्रिये!

काश्मीरे स्मेरता क्व, क्व च बहुलबले काबिलेनाविलत्वं

राढायां गाढरागाः कथमवनिभुजो डिण्डिमो डम्बरेऽस्य ।

यस्मादैतेयसेनाभुजपरिघदृढास्फोटशंकाकुलानां

प्रायःस्थेमानहेमाचलशिखरसतां दैवतानामपीह । ।३ । ।

अपि च-

कम्पश्चम्पारणीया नभिभवति सदा तैरभुक्ता न सुप्ति-

र्गाढस्त्रासश्चराढानगरनिवसतीरस्थिरत्वंगढास्थान् ।

कार्णाटान् कातरत्वं द्रविडनरपतीन् विद्रवो विप्लुतत्वं

वंगानंगानधैर्यं कुवलयनयने कामदाकामतात्र । ।४ । ।

अपि च-

यात्रायामस्य दत्तद्विरदमदजलक्षालितापत्तिपंके-

राकूलं तन्वि सिन्धु कविभिरनुपमैर्निर्भरं जातकीर्तेः ।

काश्मीर में मुस्कुराहट कहां, बहुत बल वाले काबिल (काबुल) में स्थिरता कहां, राढा देश में प्रगाढ राग कहाँ, दैत्यों के समान सेना की भुजाओं के परिघ से उत्पन्न भयंकर विस्फोट के द्वारा शंका से व्याकुल रहने वाले तथा स्थिर स्वर्णपर्वत सुमेरु के शिखर पर निवास करने वाले देवताओं के तथा अन्य राजाओं के निवास में (प्रसन्नता का) डिण्डिम वाद्य कहाँ (सम्भव था)। ।३। ।

और भी-

हे नील कमल के समान नेत्रों वाली! चम्पारन के लोगों को कँपकँपी हो आई, तीरभुक्ति या तिरहुत के लोगों की नींद उड़ गई, राढा नगर के लोगों को प्रगाढ़ डर हुआ, गढ़ा के लोग अस्थिर हो गए, कर्णाटक के लोगों में कातरता आ गई, द्रविड़ देश के राजाओं में डर समा गया। वंग तथा अंग देश के लोगों में अधीरता आ गई, तथा कामदगिरि इच्छाओं को परिपूर्ण करने वाला नहीं रहा। ।।४।।

और भी-

हे तन्वि! अनुपम कवियों के द्वारा उत्पन्न की गई अत्यधिक कीर्ति वाले इस (वीरभद्र) की यात्रा में हाथियों के मदजल से धोए गए, पैदल सैनिकों से

कालीतालीरवेण प्रमथपरिवृतो वर्तयन् नृत्तवृत्ती

धूलीरालोक्य शूली स्पृहयति वहते मुण्डमालागणाय ।।५।।

मन्दोदरी- प्रिय! सुधारससरसाभिर्भद्राभिः कथयतस्ते विशिष्य केषाञ्चिद्देशानां वृत्तान्तं श्रोतुमिच्छामि। यद्यहं तवानुरोध्या तदा कथय।

विभीषण- प्रिये! ममापि त्वया सह वार्तया समयः प्रक्षेप्तव्य इत्येव कर्तव्यम्। तत्र च न विशेषाग्रहः। तथा हि-

रहसि कथयतोरपार्थकं वा वचनमथार्थवदेव देवि यूनोः।

भवति किल कयोश्चिदेव लोके समयसमापनमुग्रभाग्यभाजोः ।।६।।

अपि च-

आलम्बसे यदि मनागपि मौनलीला-

माने कृशोदरि! कृतागसि मय्यबुद्ध्या।

या जायते मम तदा दुरवस्थितिस्तां

शक्नोतु कःकथयितुं स्मृतिभूरनंगः।।७।।

युक्त पंक वाले समुद्र को (देखकर) तथा संग्राम में उठी हुई धूल को देखकर शूल वाला शिव काली के ताल के शब्द पर नाचते हुए मुण्डमालाओं को गिनना चाहता है।

मन्दोदरी - प्रिय! सुधारस के समान भद्र (वाणियों से) कहते हुए आपसे मैं विशेष रूप से कुछ देशों का वृन्तान्त सुनना चाहती हूँ। यदि मैं आपसे अनुरोध के योग्य होऊँ, तो आप कहिये।

विभीषण - प्रिये! मुझे भी तुम्हारे साथ समय बिताना चाहिये, अतः यही करना ठीक है। इसमें विशेष आग्रह की आवश्यकता नहीं। क्योंकि--

देवि! एकान्त में बातचीत करते हुए युवक तथा युवति का वचन चाहे व्यर्थ हो तो भी सार्थक होता है। यह बड़े भाग्य वाले कुछ ही लोगों को इस प्रकार समय बिताने का अवसर मिलता है। ।।६।।

और भी-

हे कृश उदर वाली! यदि मुझ अपराधी के प्रति, न जानते हुए भी जरा सा भी चुप रहने की लीला भी करती हो तब मेरी जो दुरवस्था होती है, उसे

किं च- अन्तरान्तरा प्रिय! कान्त! प्राणनाथ! जीवेश! मनोहर! मनोज्ञ! मन्मथाभिराम! मदीयहृदयकुमुदवनाह्लादनातन्द्रचन्द्र! अनवसरसरोषपञ्चशर-शराभिघातजर्जरीभवन्मनोवृत्तिमहौषध! वियोगदावदहनदह्यमानमदंगवन परित्राणमहावर्ष! इत्याद्याः सम्बुद्धीः पुरस्कृत्य सस्मितं मन्दमारुतान्दोलितनीलोत्पल-सदृशा दृशा तिर्यगवलोक्याधरमधुसम्पर्कादिव मधुराभिः वदनसुधाकर संगादिव सरसाभिः दशनदीधितिसंसर्गादिव मनोहराभिः वाणीभिः प्रियाणां कर्णस्वर्णघटीसम्भृतवचनपीयूषोदन्वति निर्भरं निमज्य समेषांचिदेवमनोमरालः सान्द्रतरमानन्दमासाद्यास्वाद्य च मनोभवपरवशत्वमनुकूलं मन्यते। अनेवंविधास्तु शान्तिमेव सेवितुमर्हाः। तथा हि-

यन्नाम जन्मनि कदापि मनोहराणां
वाक्यामृतानि सुदृशां न निशामयन्ति।
शिष्टावृताः शमकथाः परिहाय तेषां
हा हन्त मन्मथवशत्वमयुक्तमेव।।८।।

क्या मनोज कामदेव भी वर्णन कर सकता है? ।।७।।

और भी - बीच बीच में- प्रिय! कान्त! प्राणनाथ! जीवेश!मनोहर! कामदेव! कामदेव के समान सुन्दर! मेरे हृदय के कुमुदवन को सदा प्रसन्न करने वाले चन्द्र! बिना अवसर के ही कामदेव के रोषपूर्ण बाणों के आघात से जर्जर होने वाली मेरी मनोवृत्ति के महौषध! वियोग की दावाग्नि में जलने वाले मेरे अंगों के परित्राण के लिये महामेघ!- इत्यादि सम्बोधनों के द्वारा मुस्कराते हुए, मन्द हवा से हिलते हुए नीलकमल के सदृश आँखों से तिरछे देखते हुए, अधरोष्ठ के मधु के सम्पर्क से मानों मुख में चन्द्र के सम्पर्क के कारण अथवा मानो दाँतों की किरणों के संसर्ग के कारण मधुर, सरस, मनोहर वाणी से प्रिय लोगों को कान रूपी स्वर्णघट में वचन रुपी अमृत का समुद्र (बनाकर) उसमें डुबोने पर सामान्यतः सभी लोगों का मन इस प्रकार के आनन्द का अनुभव करते हुए अपने को कामदेव के अनुकूल अधीन मानता है। पर जो ऐसे नहीं है उन्हें तो शान्ति का ही सेवन करना चाहिये। जैसे कि-

जो इस जन्म में मनोहर, सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों के अमृतमय वाक्य नहीं सुनते उनका शिष्टों द्वारा कही गई शान्ति की कहानी के अलावा कामदेव

अपि च-

एणीदृशा सरसया परिशीलितेषु

तामन्तरा रतिकथासुवृथारतेषु।

वैवस्वतः सुकृतदुष्कृतिनो निवासा--

वानन्ददुःखजनिभूर्द्विविधो मनोभूः।।६।।

मन्दोदरी-(सानन्दम्) कान्त यद्येवमपि भूयाननुग्रहः। कथय तर्हि सविस्तरं ताः कथाः।

विभीषणः- प्रिये! तदधिकृत प्रबलतरभुजपरिघापविद्धप्रचण्डतर दण्डाभिघातप्रभवत्प्रभूतनिःसाननिःस्वानैराह्वानैरिव भटेष्वभिमुखं प्रतिभटमुदन्वतमुद्वेल तामानयति, झञ्झाप्रभञ्जनाधिक वाजिराजिप्रखरतरखुरा ग्रटंकाभिघातचूर्णितविश्वम्भरावलयरजोधरणिव्याजादम्बराम्बरं ग्रहनक्षत्रचक्रकिंकिणिजालं ध्वजदण्डमुद्वहति असंख्यातसंख्य सैन्धवखुरपुटस्फुटाभिघातखिन्नामिव वसुमतीं भूधरप्रतिमाप्रतिम

के वश में होना बेकार ही है। ।।८।।

और भी - हिरणियों जैसी आँखों वाली स्त्रियों के द्वारा सरस परिशीलित रतिकथा में निरत होने पर उनके बीच विवस्वान् के सातवें पुत्र मनु की सृष्टि के सुकृत तथा दुष्कृत दोनों ही निवास करते हैं। क्योंकि मनोज कामदेव आनन्द और दुख इन दोनों से उत्पन्न होने से दो प्रकार का है। ।।६।।

मन्दोदरी - (आनन्द सहित) कान्त! यदि ऐसा है तो आपका बहुत बड़ा अनुग्रह है। तो फिर उसी कथा को विस्तारपूर्वक सुनाइये।

विभीषण - प्रिये! उसके द्वारा अधिकृत अतिप्रबल भुजारूपी परिघ से सम्पन्न जो अतिप्रचण्ड अभिघात, उससे सम्पन्न जो महान् ध्वनि प्रतिध्वनि, उसे आह्वान मान कर दौड़ते हुए सैनिकों प्रतिसैनिकों के द्वारा समुद्र को विक्षुब्ध बनाने पर, तूफ़ानी हवा से भी तेज घोड़ों के समूह के अतिप्रखर, खुरों के टाप के दबाव से चूर्णित जो धरती उससे उठी हुई धूल के बहाने विभिन्न आकाशों में ग्रह, नक्षत्र आदि के समूहों में अपनी ध्वजा फहराते हुए, अगणनीय संख्या वाले घोड़ों के खुरपुटों के स्पष्ट अभिघात से खिन्न सी वसुमती को अनन्त मार्गों से आए हुए पर्वत के समान हाथियों के मदजल प्रवाह के द्वारा सींचने पर,

गणनामार्गाना[illegible]समग्रवाहैः सिञ्चति अतिदीर्घचामरचारुतरचल तुरंगमपुच्छमारुतैर्गतश्रमावंचनीयसेनाभारसविशदां वसुन्धराम् उन्मीलयन्ति भूमिष्ठाः। त्वरितगतिभिस्तुरङ्गव्याजादुच्चैःश्रवस्सहस्रपरमर्धैरनुगम्यमाने तुरंगमारूढतया पराक्रमणं न युक्तमिति मत्येव परित्यक्तवाहैः पन्तितर्तिभिः परिवृते, कीर्तिसुंधाधवलभूचक्र साम्राज्यैकभवनस्य राजतेनेव कलशेन सितेनैकेन छत्रेणोपशोभमाने, दशदिगागतानेकवाहिनीव्यूहानुगम्यमानतया सागरे, डिण्डीरपिण्डपद्धतिभ्यां चामराभ्यामुपशोभिते अग्निशीर्षाणामस्माकं स्वल्पेनैवोत्पूलवेनाकाशघासग्रास इति मत्येवोत्लुत्य चलद्भिरुष्ट्रैर्युक्ते अश्वतराणामस्माकं नाश्वावधिकोपेक्षितो गतावपकर्ष इति स्पर्धयेव त्वरितमुपगच्छद्भिरश्वतरैरनुगतेऽन्तरालावस्थितातिगरिष्ठद्विरदपृष्ठाधिष्ठितध्वजेन कूर्मावस्थितमूलेन मन्दरेण शोभमानं पारावारमनुकुर्वाणे, अनुकूलानिल चाल्यमानयाऽग्रेसरनीयमानया पताकपाति तुंगकुम्भिकुम्भस्थलाभिघातापराधशंकयेव नभश्चारिणो भूतगणानुत्सारयति,

---

अतिविशाल चामर से सुन्दर चलते हुए घोड़ों की पूँछ की हवा से जिनका श्रम दूर हो गया है ऐसी सेना के प्रबल सार वाली वसुन्धरा को लोग देख रहे है। त्वरित गति वाले घोड़ों के बहाने हजारों इन्द्र के घोड़ों - उच्चैःश्रवा के द्वारा पीछा किये जाने पर घोड़े पर चढ़कर आक्रमण करना ठीक नहीं है - मानों इसीलिये वाहन को छोड़कर पैदल चलने वाले सैनिकों से घिरे होने पर, कीर्ति की सुधा से धवल राजाओं के साम्राज्य का एक मात्र चिह्न - चमकता हुआ कलश तथा अकेला श्वेत छत्र - इन दोनों से शोभित होने पर, दसों दिशाओं से आई हुई अनेक सेना के द्वारा पीछा किये जाते हुए (सैन्य) सागर के होने पर, समुद्र के फेन की पद्धति से (श्वेत) चामर से शोभित होने पर, 'हम आग जैसे सिर वालों के द्वारा तो जरा सी उछाल से ही ऊपर की घास ग्रास में आ जावेगी'- मानों यह सोचकर चलने वाले ऊँटों से युक्त होने पर, 'हम छोटे घोड़ों की अन्य बड़े घोड़ों से गति में कोई न्यूनता नहीं है'- मानों इसीलिये छोटे घोड़ों के तेजी से पीछे २ चलने पर, बीच में अवस्थित अत्यन्त भारी हाथी की पीठ पर अधिष्ठित ध्वजा के द्वारा कूर्म में अवस्थित समुद्र पर मन्दराचल की शोभा का अनुकरण करने पर, अनुंकूल वायु के द्वारा चलाए जाने पर आगे लाई जाने वाली पताका के गिरने से विशाल मस्तक वाले हथियों के अभिघात रूपी अपराध की

कैश्चिदनतिप्राणानिलमपरपोद्यतचपलैभिरलंकृतकरैः समसमरतया कीर्तिकामिनीवेणी-

भिरिवासिलताभिः पुरस्कृत – पाणिभिरितरैर्ज्यासक्तपुंखशरसनाथकार्मुकेन पुरस्कृतजिह्वफलामण्डलेन भूषितभुजोरगैरन्यैः करतलप्रदर्शितशक्तिभिरिव शक्तिहस्तैःपरायुधपाणिभिश्चपरैर्युद्धविद्याविशारदैर्व्याप्तेप्रयाणोद्यतेऽस्युसैन्यसागरे यत्र यत्र देशे यद्यज्ञातं तत्तत्क्रमपुरस्कारेण यथास्फूर्ति मया निवेद्यमानं निशामय।

दण्डाघाततदुत्थनिस्वनभवामार्तिं परेषां क्षमो

वक्तुं शेषमहोरगो यदि भवेत् सेनाभरानाकुलः।

निःसानेष्वधिकारिभिः समुचितस्तापः कृतो यो ऽग्निना

तेनासीत् कमलाक्षिदुः सहतरः काचीबिजौराज्वरः।।१०।।

तत्र कश्चिन्निम्नकण्टकिततनुं करलग्नां बालां कण्टकाविद्धकबरीभरान्ताद्दाक्षिण्येन सहाक्षिप्य प्रविवेश। परस्तु सहलग्नायाः

शंका - मानों इसीलिये नभ में विचरण करने वाले सिद्धों द्वारा भूतगणों को हटाए जाने पंर, कुछ (सैनिक) डूबती हुई प्राणवायु को उबारने वाले अपने अलंकृत हाथों से, कुछ लोग युद्ध के विषम होने के कारण कीर्ति रूपी प्रेयसी की चोटी के समान अपने तलवार वाले हाथों से, कुछ लोग धनुष की डोरी तथा बाण वाले धनुष से, कुछ लोग जीभ को आगे फैलाने वाले साँपों से भूषित हाथों से, कुछ लोग हाथ में प्रदर्शित शक्ति के समान शक्ति वाले हाथों से, अन्य आयुध वाले हाथों वाले युद्ध विद्या में विशारद सैनिकों से व्याप्त होने पर सैन्य सागर के प्रयाण के लिये तैयार होने पर जिस जिस देश में जो जो हुआ, उसे क्रमानुसार मेरी बुद्धि के अनुसार कहे जाने पर सुनो।

यदि सेना से व्याकुल शेष महानाग दण्ड के आघात तथा उससे उत्पन्न भीषण ध्वनि से उत्पन्न दूसरों के कष्ट कहने में समर्थ हो (तो वह कहेगा कि) अधिकारियों के द्वारा अग्नि से जो समुचित ताप किया गया उससे कमलाक्षी के लिये भी अतिदुःसह काचीबिजौरा (स्थान का नाम) को पीड़ा हुई थी।।१०।।

उस समय रोमाञ्च से भरा हुआ रंगबिरंगे वस्त्रों वाला कोई कम रोमांच वाली हाथ में आई बाला को धीरे से अलग करके (वन की ओर) प्रवेश कर गया। दूसरा अन्य, साथ संलग्न प्रिया के कन्धे पर चढ़कर पर्वत के शिखर पर

प्रियायाः स्कन्धमारुह्य समुन्नतं शिखरिशिखरमारुरोह। इतरस्तु तल्पे सहशयानामेव हरिणनयनां परिहृत्य प्रयाणाय मनश्चकार। राजा तु तथा कुलानपि दाराननादृत्य सह कैश्चिद्वनं विवेश। तदनु च-

हारानारादपास्य क्वचन मणिमयं कंकणं स्थापयित्वा

केयूरादीन् व्युदस्य द्रुतमथ वसनं शीर्णपर्णैर्विधाय।

गुंजापुंजाभिरामास्त्वरितमुपगताः पाणिना रुद्धमार्गा

वल्लीरुत्सार्य भिल्ली दृढतरभवनं ता द्विषद्राजदाराः।।११।।

तदनन्तरं च-

अस्ताशंकं शिखरिशिखरारोहणे त्यक्तलज्जं

पत्रावल्या वसनरचने नीरसास्वादने च।

सद्यो जाता विषमविपिने तद्द्विषत्पार्थिवानां

जाताभ्यासाःसुमुखि शबरीशिक्षया सारसाक्ष्यः।।१२।।

चढ़ गया। दूसरे ने बिस्तर पर साथ लेटी हुई हिरणी के समान आँखों वाली को छोड़कर जाने का मन बनाया। राजा तो उन कुलीन स्त्रियों का भी अनादर करके कुछ के साथ वन में घुस गया। उसके पीछे-

हारों को जल्दी से फेंककर, कहीं पर मणिमय कंगन को रखकर, केयूर इत्यादि को अलग करके, जल्दी से सूखे पत्तों से कपड़े का काम चलाकर गुंजा के समान सुन्दर शत्रु राजाओं की स्त्रियां हाथ से रास्ते को रोककर लताओं तथा मजबूत भवनों को छोड़कर जल्दी से चली गईं। ।।११।।

तत्पश्चात्

उन शत्रु राजाओं की सारस या कमल के समान आँखों वाली स्त्रियाँ ऊंचे, नीचे जंगल में सुमुखी शबरियों के सिखाने से (सूर्य के) पर्वत की चोटी की ओर पहुँचने पर, उसे अस्त हुआ समझकर, लज्जा को छोड़कर पत्तों के कपड़े पहनने तथा नीरस भोजन का आस्वादन करने में शीघ्र ही अभ्यास वाली हो गईं ।।१२।।

कानों के समीप तक आँखों वाली! कुछ अन्य भी आश्चर्य उत्पन्न करने वाले वर्णों को सुनो-

यदि किसी षड्यन्त्रपूर्वक द्वेष करने वाले की 'वीरभद्र को यहाँ (देखो)'-

आकर्णय चाकर्णाक्षि! कतिचिद्वर्णानाश्चर्यसमर्पकान्।

यस्योच्चैरिह वीरभद्रमधुनेत्याशीर्गिरामादरा-

दुक्तानां गुरुणा तदीक्षणविधौ मत्वाभिसन्धिद्विषः।

दिक्चक्रप्रहिताक्षिकोणमसकृत्त्रासोदयव्याकुल-

स्वान्तं प्रस्खलदंघ्रिपद्ममटवीं हित्वा दरीमाश्रिताः।।१३।।

मन्दोदरी- (सविषादम्) प्रिय! येषां कांता धीरा अनवधारितभयहेतवो त एव धन्याः। नो चेत् प्रियानौचितीमनुभूय भूयः समागमाय कथमन्तःकरण वृत्तिरवकल्पते।तथाहि-

प्राणैः समां समभिधाय कथं कथंचित्

प्राणाधिकामभिदधत्यवधाय भूयः।

यातां विहाय पदमार्पयतां प्रियाणां

इस प्रकार की गम्भीर वाणी कोई सुनें तो 'हम उसके द्वारा देखे जाएँगे' यह सोचकर सभी दिशाओं में आँखें घुमाते हुए बार २ डर से व्याकुल मन वाले होकर वे लड़खड़ाते चरणकमलों से जंगल को छोड़कर गुफा की तरफ भाग जाते थे ।।१३।।

मन्दोदरी - (विषादपूर्वक) प्रिय! जिनकी स्त्री धीर हो वे ही भय का अनुभव न करते हुए धन्य होते हैं। अन्यथा प्रिया के अनौचित्य को देखकर उसके समागम के लिये अन्तःकरण वृत्ति किस प्रकार बन सकती है। जैसे-

पहले किसी प्रकार उसे प्राणों के समान बताकर बाद में उस (प्रिया को) प्राणों से भी अधिक बताते हैं। पर जो लोग उस जाती हुई को छोड़कर अन्यत्र कदम रखते हैं, उनकी कृत्रिमता की दशा में उनके स्नेह का क्या औचित्य रह जाता है ।।१४।।

विभीषण - प्रिये! स्थिरचित्त वालों का यह उपक्रम हो सकता है। डर रूपी बाघ के ग्रास में गिरे हुए चित्तवृत्ति वालों के लिये तो उचित अनुचित सोचने का अवसर नहीं। क्योंकि-

अरुन्धती के सहचर धर्म के साथ विग्रह करके जिस राजा ने ब्राह्मण्य पाया तथा अतिकठिन तप किया, हे सुमुखि! जिसने कथा नहीं सुनी वह काम

स्नेहस्य कृत्रिमतया कतमौचिती स्यात्।।१४।।

विभीषणः- प्रिये! सचेतसामसावुपक्रमो व्युत्क्रमः। त्रासशार्दूलग्रासपतितचेतसां तु नोचितानुचितप्रतिसन्धानावसरः। तथा हि-

योऽरुन्धतीसहचरेण विगृह्य राजा
ब्राह्मण्यमाप्तमतिदुर्गतपश्चचार।
नाकर्णितं सुमुखि येन कथा स काम-
श्चिक्षेप कानिचिदसौ तपसो दिनानि।।१५।।

अत्रान्तरा जलनिधौ चरमे समेत्य
यात्राश्रमानथ विहन्तुमिवांशुमाली।
दैत्यावलीरुधिरवर्षनिषेकशाली
कालीकपालरुचिरो बलतो ललम्बे।१६।।

अथ ताण्डवाडम्बरप्रसक्तकालिकाधरपालिकासवपानमत्तभैरव-करकमलनिपतितरुधिरपानकपालकल्पे भर्तृनृत्तानुकारप्रवृत्तकालीकर्णावतं-

---

तपस्या के कुछ दिन बिता रहा है।।।१५।।

इस बीच दैत्यसमूह के रुधिर की वर्षा से निषेक करने वाला, (लाल रंग होने से ऐसा कहा गया है।) काली के कपाल के समान अतिप्रदीप्त अंशुमाली अर्थात् सूर्य मानों अपने यात्रा के श्रम को दूर करने के लिये समुद्र के सबसे अन्तिम स्थान में पहुंच कर जबर्दस्ती नीचे की ओर लटक गया।।।१६।।

अब ताण्डव नृत्य के आडम्बर में लगी हुई जो कालिका, उसके अधरोष्ठ रूपी मद्यपान में लगे हुए जो मतवाले भैरव, उनके कर कमल में पड़ा हुआ जो रुधिर पान के लिये (लाल) खप्पर, उसके समान (लाल सूर्य) के होने पर, अपने पति के अनुकरण में लगी हुई काली के कान के आभूषण से गिरा हुआ जो जपा अर्थात् गुड़हल के फूल के समान लाल भगवान् सूर्य के धीरे - २ दूर जाने पर तथा उसके रथ के चक्र (के चलने) की आवाज को सुनकर इन दोनों (विभीषण तथा मन्दोदरी) के मन में प्राकरणिक कथा की प्रवृत्ति में प्रतिबन्धक (काम रूपी) विघ्न उपस्थित हो आया।

फिर उनमें विरह वर्णन के अनुकूल वाणी का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

सस्खलितजपाकुसमगुच्छसदृशे गतेऽस्तं भगवति मयूखमालिनि मन्दं

मन्दमसन्निधिमाकलयतोरथांग यूनोराक्रन्दितमाकर्ण्यानियोरन्त:करणे प्रकृतकथा प्रवृत्ति-प्रतिबन्धको व्यासंगो बभूव।

बभूव च तयोर्वियोगवर्णनानुगुणो वाक्प्रचारः।

विभीषणः-

मित्रे गते क्वचन रक्षितरि क्षपायां
चक्षुः प्रयोज्यनमुचि प्रसृतेऽन्धकारे।
शान्तैः शरैरहह कृन्तति नूनमंग-
माक्रन्दतोरिह विहंगमयोरनंगः ।।१७।।

दावानलेन कमलाक्षिवियोगवह्नेः
साम्यं कथं कथय चेतसि चेष्टितान्तः।
यस्मिन् मनाक् प्रभवतीन्दुकलामृणाल-
कर्पूरचन्दनरसा अपि तापयन्ति।।१८।।

निर्वापणाय हृदयस्थवियोगवह्ने-
रस्त्रैरजस्रमिह यः क्रियतेऽभिषेकः।
तेनोद्गतासु तनुधूमपरम्परैव

विभीषण - रात्रि में रक्षा करने वाले मित्रों के कहीं चले जाने पर आँखों को लगाने वाले (प्रकाश को) न छोड़ने वाले, मेघ के समान काले अन्धकार के फैल जाने पर, पक्षियों के विलापपूर्ण आवाज करने पर अनंग अर्थात् कामदेव अपने शान्त बाणों से अंगों को निश्चय ही काट रहा है। ।।१७।।

चंचल चित्त में उत्पन्न होने वाली कमलाक्षी के वियोग से उत्पन्न अग्नि की जंगल की अग्नि से, कहो, किस प्रकार समानता बताई जाय। क्योंकि इन (वियोगाग्नियों के) उत्पन्न हो जाने पर तो यें (अग्नियां) चन्द्रमा की कला, कमलनाल, कपूर तथा चन्दनरस को भी तपा डालती हैं। ।।१८।।

हृदय में स्थित वियोग की अग्नि को बुझाने के लिये जिस (कामदेव के) अस्त्र से निरन्तर अभिषेक किया जाता है, उसके उठने या प्रबल होने पर तो रात्रि में शरीर की धूम परम्परा ही अन्धकार के रूप में सर्वत्र व्याप्त हो जाती

रात्रौ [illegible] प्रथिमानमेति । ।१९। ।

मन्दोदरी- प्राणेश! प्रायेण प्रियतमप्राप्त्याशैव वियोगवह्नेरभिभवहेतुः। प्राप्तिस्तून्मूलनस्यालम्बा। प्रायेणेत्यनेन स हि प्रयुज्यमानस्तस्योपशमे हेत्वन्तरं सम्भावयति।

विभीषणः- प्राणेश्वरि! सत्यमेतत्। यतः-

आलिङ्ग्यामृतशीतलेन वपुषा वृद्धिं भवन्तं मुहु-
र्दूरीकृत्य निवार्य चुम्बनरसैर्भागान् स्फुटान् सर्वतः।
श्रीखण्डद्रवशीतलेन हृदयेनालिङ्ग्य वृद्धिं मुहुः
सर्पन्तीमभिवार्य चुम्बननरसैरुत्सार्य भागान् बहून्
लीनो वक्षसि सुभ्रु भूरिनखराघातच्छलात्तत्क्षणं
प्राणेशेनवियोगदावशिखिनःशेषःसमुत्खन्यते । ।२०। ।

है।१९। ।

मन्दोदरी - प्राणेश! प्रायः प्रियतम की प्राप्ति की आशा ही वियोगाग्नि के दबाने का कारण बनती है। प्राप्ति होने पर तो उसका उन्मूलन हो जाता है। 'प्रायः' इसलिये कहा है कि उसकी शान्ति में अन्य भी कारण बन सकते हैं।

विभीषण - प्राणेश्वरि! यह सच है। क्योंकि-

अमृतरूपी शीतल शरीर से बढ़ते हुए आपका बार - बार आलिंगन करते हुए, दूर करके तथा रोक करके भी अपने चुम्बन रस से सभी अंगों को संसक्त करते हुए, पुनः श्री खण्डद्रव के समान शीतल हृदय से बार - २ खूब आलिंगन करते हुए, इधर उधर चंचल होती हुई को रोक कर पुनः चुम्बन रस से अनेक अंगों का स्पर्श करते हुए हृदय में लीन हो जाने पर, हे सुन्दर भौहों वाली! नाखून के खूब आघात के बहाने प्राणेश के द्वारा वियोगरूपी वनाग्नि का बचा हुआ सब कुछ उखाड़ डाला जाता है। । ।२०। ।

(मन्दोदरी लज्जित होकर इधर उधर देखती है।)

उनके इसी प्रकार बातें करते रहने पर अन्तःपुर में विचरण करने वाले किसी विशेष सेवक ने हाथ जोड़कर आगे स्थित होकर ऐसा कहा - वीर! (आपके) भुजा रूपी अरगला को देखने से धुल गए अहंकार वाले सुरेश्वर इन्द्र द्वारा भेजा

(मन्दोदरी सलज्जाऽन्यतोऽवलोकयति)

तयोरेवमभिजल्पतोः कश्चिदत्यन्तान्तः पुरचारी पुरुषः बद्धांजलिरग्रतः स्थित्वा- वीर! भुजार्गलावलोकनगलदहंकारसुरेश्वरप्रेषित चिन्तामणिमयकरमूलनिहितकंकणोपहसितकल्पवृक्षालवाल! निखिलजगदण्ड-मण्डपपञ्जरचंक्रममाणपरिघदीर्घभुजार्जितपुण्डरीकमण्डल! पाण्डुरयशोराशिमराल-कल्पान्तकालकरालहरभालानलज्वालाज्वालविशालप्रतापमार्तण्डातिदुःसहप्रभाशोणिमपराभूत प्रवाललंकाधिनाथ! अलंकुरु सम्प्रति शयनशालां समाप्तकल्पोऽयं यामिन्याःप्रथमोयामः। देवि मन्दोदरि! त्वमग्रतोविभूषयभोगभवनमित्याद्युवाच।

तदनुजवर्गाधीशशातोदरी सा
तनुरतनुश्रीराज्ञया वल्लभस्य।
अमलकमलनेत्रा चन्द्रमश्चारुवक्त्रा

गया जो चिन्तामणि नामक विशेष रत्न उस वाले हाथ के नीचे पहना गया जो कंगन उसके द्वारा जिसने कल्पवृक्ष के थाले का उपहास उड़ाया है, ऐसे राजन्! (अर्थात् उसका कंगन कल्पवृक्ष के थाले की गोलाई से भी ज्यादा बड़ा था!), सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही जो आपके लिये मण्डप के सदृश है, इस प्रकार के (ब्रह्माण्ड) में घूमने वाली परिघसदृश जो आपकी लम्बी भुजा उसके लिये विशाल कमल के मण्डल को प्राप्त करने वाले! कल्पान्त काल तक राजहंस रूपी अत्यन्त शुभ्र यश रखने वाले तथा अतिभयंकर शिव की अग्नि की लपट रूपी तथा विशाल मार्तण्डरूपी जो प्रताप, उसकी जो दुःसह प्रभा, उसकी ललिमा से किसलय या नए कोपल की ललिमा को दबाने वाले लंका के नाथ! इस समय शयनशाला को अलंकृत करें। रात्रि का प्रथम प्रहर लगभग समाप्त हो गया। देवि मन्दोदरी! तुम आगे २ भोगभवन को विभूषित करो, इत्यादि कहा।

वह अपने अनुज लोगों की अधीश कृशोदरी कृश होकर भी उच्च शोभा वाली निर्मल कमल के समान आँखों वाली, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली, सोने की कसौटी के समान अंगों वाली अपने प्रिय की आज्ञा से शयनकक्ष मेंगई।।।२१।।

विभीषण तो-

ये फैले हुए लंकापुरी के पहरेदार कुन्त नामक शस्त्र के हाथ वाले होकर, बल से चलने वाले शक्ति नामक शस्त्र वाले होकर, धनुष के कार्यों में कौशल

विभीषणस्तु-

कुन्ताक्रान्तकरैः कियद्गिरिवरैः शक्तिस्फुरच्छक्तिभिः
कैश्चित् कार्मुककर्मकौशलरतैरन्यैरसिप्रांशुभिः।
उद्यन्मुद्गरयष्टिपाशपरशुस्फूर्जत्करैश्चापरैः
स्थेयंजागरणोद्यतैरिह ततैर्लंकापुरीयामिकैः ।।२२।।

इत्यादिश्य तदभिमुखो जगाम। तत्र च भवनांगणे गत्वा पर्यंकगतां मन्दोदरीमवलोक्य--

लंकालंकरणं भुवो मणिगणैराकल्पितं मन्दिरं
तस्यास्तस्य च हीरकादिघटिता गर्भा स्थिता वेदिका।
शय्यास्या इह हेमचम्पकदलस्निग्धा नवीनाम्बुज--
श्लक्ष्णाक्षीयमनंगमंगलगृहं मन्दोदरी नःप्रिया।।२३।।

बनाए रखते हुए, अन्यों के द्वारा तलवार तथा प्रांशु वाले होकर, उठी हुई मुद्गर, छड़ी, पाश, फावड़ा इत्यादि से चंचल हाथों वाले होकर जागने के लिये तैयार होकर उपस्थित रहें ।।।२२।।

इस प्रकार आदेश देकर उसकी ओर चल पड़ा। वहां पर भवन के बारामदे में जाकर पलंग पर लेटी हुई मन्दोदरी को देखकर-

यहां धरती का लंका नामक अलंकार है, बहुत सी मणियों से निर्मित मन्दिर है, उस विभीषण तथा मन्दोदरी के लिये हीरे इत्यादि से निर्मित वेदि है, यह मन्दोदरी की शय्या है, यह कामदेव का मंगलगृह है, यह सोने जैसे चम्पक के पत्ते के समान स्निग्ध, नवीन कमल के समान चिकनी आँखों वाली हमारी प्रिय मन्दोदरी है ।।।२३।।

अपने कटाक्ष के प्रक्षेप के छल या बहाने से अनेक कमल समूह वाली, हिरणियों के समान आंखों वाली यह क्योंकि बाण समूह का प्रक्षेप कर रही है, अतः मैं मानता हूँ कि यह कृशांगी, मुट्ठी में जिसकी कमर आ जाय, इस प्रकार वाली वस्तुतः कामदेव के (बाणों की) धनुर्यष्टि ही है।

उसके पश्चात् घर की ओर आते हुए उसे देखकर मन्दोदरी ने मन्दराचल

कटाक्षप्रक्षेपच्छलजलदनेकोत्पलवती

शरश्रेणीरेणीदृगियमभितो मुञ्चति यतः।

ततो मन्ये मुष्टिग्रहणतनुमध्या नततनु-

र्धनुर्यष्टिः स्पष्टा सुतनु कपटैषा स्मृतिभुवः।।२४।।

ततो गृहाभिमुखमायान्तं तमवलोक्य मन्दोदरी मन्दराचलाभिघात घूर्णदुग्धाब्धिडिण्डीरपिण्डपाण्डुरास्तरणात् पर्यंकतलादभ्युत्थाय प्रतिजग्राह। नवपूर्वभयाहृतचिन्ता तथा सरसाः कथाश्चकार।

विभीषणः- नूनमियं मुग्धतया यामिकादिघटनाजातविलम्बं मां तथानवधार्यान्यांगनां गणगतमाशङ्क्य पुरेव न सस्पृहा, तदिहास्या अनुनये यत्नं करोमीति विचिन्त्य-

दौवारिकादिघटनासु विलम्ब्य याव-

दायामि वामनयने शयने तवैव।

तावद्बभूव नतमप्यपरानुराग-

शंका-कलंकि-हृदयं कलुषं वृथा ते।।२५।।

के अभिघात से घूमता हुआ जो क्षीरसागर उसमें से निकलने वाले फेन के समान अत्यन्त श्वेत बिछौने वाले पलंग से उठकर उसकी आगवानी की। पिछले भय से आकृष्ट चित्त वाली ने उससे सरस बातें की।

विभीषण - निश्चय ही यह अपनी मुग्धता के कारण, पहरेदारों की घटना से मुझे विलम्ब हुआ - इसे न समझकर मुझे अन्य स्त्रियों के पास गया हुआ समझकर पहले के समान स्पृहा से युक्त नहीं रह गई। अतः मैं इसे मनाने का प्रयत्न करता हूँ, यह सोच कर-

हे वामनयने! पहरेदारों की घटना में मुझे जो विलम्ब हुआ, उसके पश्चात् मैं सीधे तुम्हारे पलंग के पास ही आ रहा हूँ। अतः तुम्हारा हृदय दूसरे के प्रति अनुराग की शंका से व्यर्थ ही कलुष हुआ है।।२५।।

मन्दोदरी - (अपने मन में) निश्चय ही यह अन्य कृशोदरी स्त्रियों के प्रति इच्छा रखता है। अन्यथा आशंका न करने पर इस प्रकार आकस्मिक रूप से क्यों दरवाजा खोलता।

(जोर से - गुस्से के साथ) इस डर की क्या जरुरत। अन्य सारसाक्षी स्त्रियों

मन्दोदरी- (स्वगतम्) नूनमसावपरकृशोदरीषु सवाशनः, कथमन्यथा ऽनाशंकितो द्वारमाकस्मिकमातनोति।

(प्रकाशम्-सरोषम्) किमनया विभीषिकया, अनुसरापराः सारसाक्षीरित्यभिधाय मानिनी बभूव।

विभीषणः- तन्वि! कोऽयमनवसरो रोषप्रसरः।

> **पश्येमा घनरोचिषा दश दिशः श्यामाः समाकर्णय**
> **धीरे वारिमुचां ध्वनीन् स्पृश मुहुः शीतान् कदम्बानिलान्।**
> **दृष्ट्वा पाशरुचस्तथा सहजतः शीतानपि त्वद्रुषा**
> **बिन्दूनास्पृशतो दवाग्निकणिकाभावं क्षणं वारय।।२६।।**

अपि च-

> **वक्षो मम स्मरशराहतिभीतिजात-**
> **क्षोभातुरं तरुणि पद्मदलायताक्षि!**
> **वक्षोजसंगतिकठोर मुरस्त्वदीयं**
> **सन्नाहकल्पमभिवाञ्छति संगमाय।।२७।।**

का ही अनुसरण करो। ऐसा कह कर क्रोधिनी हो गयी।

विभीषण - तन्वि! यह बिना अवसर के ही क्रोध का प्रसार क्यों?

जरा दसों दिशाओं में मेघ के समान कालिमा को देखो, मेघों की ध्वनि को सुनो, कदम्ब की शीत वायु को तथा ठण्डी बूँदों को छुओ, तब अपने केशों की आभा को देखकर वनाग्नि के चिनगारी के भाव को जरा रोक दो। ।।२६।।

और भी -

कमलपत्र के समान सुदीर्घ आँखों वाली तरुणि! कामदेव के बाणों के आघात के डर से क्षोभित मेरा वक्षःस्थल तुम्हारे स्तनों के संसर्ग से कठोर उरःस्थल के साथ संगम के लिये युद्ध जैसी तैयारी कर रहा है। ।।२७।।

और भी -

हे इस धरती पर सारतत्त्व ! तुम्हारे रोष करने पर ऐसा लगता है कि बादलों

अपि च-

कादम्बिनीयमवनीतलसारभूते
रोषे तव स्फुरति मन्मथदाववह्नेः।
धूमावलीव मथितस्य शिखा छलेन
विद्युत्प्रचारनिवहस्य विकाशयन्ती ।।२८।।

इत्यादिना प्रकारेण तामनुनीय याः स्मरवशो लीलाश्चकार तासु क्रीडाजनितश्रमभाराहितनिद्रासमाज एवान्तरायो बभूव।

स्वस्ति श्रीमद्बघेल कुलावतंस महाराजाधिराज श्री रामचन्द्रदेवात्मज श्री यशोदानन्दन युवराज श्री वीरभद्रदेवचरिते मिश्र श्री बलभद्रात्मज विजयश्रीगर्भ सम्भवसकलशास्त्रारविन्द प्रद्योतनभट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचिते द्वितीय उच्छ्वासः समाप्तः।।

की पंक्ति धूमावली को मथकर बिजली के बहाने कामदेव की अग्नि को प्रकाशित कर रहा हो।

इस प्रकार उसे मनाकर, काम के वश में होकर, जो लीलाएं की उनमें अन्ततः क्रीड़ा से उत्पन्न श्रम द्वारा आई नींद ही बाधक बनी।

बघेल वंश के भूषण महाराजाधिराज श्री रामचन्द्रदेव के पुत्र श्री यशोदा के पुत्र युवराज श्री वीरभद्रदेव चरित का श्री बलभद्र मिश्र के पुत्र विजयश्री से उत्पन्न सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचित द्वितीय उच्छ्वास समाप्त हुआ।

❑

तृतीय उच्छ्वासः

अथ पवनतनयदह्यमानवेणुचटचटारावकल्पेन तद्भंज्यमानतत्कानन ध्वनिदुःसहेन प्राभातिकै तन्निःस्वाननिस्वनेन जागरावस्थामानी-तयोरेतयोस्तत्कथायामेवौत्सुक्यमानसमासीत्।

मन्दोदरी- प्रिय! कथय तामेव कथाम्।

विभीषणः- तन्वि! नमस्कुरु तावदुदितं भास्वन्तम्। एष हि गगनसरणि-प्रयाणोत्सवतिलकदानादिमंगलोद्यतप्राचीपुरन्ध्रीवसनकान्तिसंक्रान्त्येवारुणः परितस्ततमपि समस्तमलमुन्मूलयति। अपि च वासरपञ्चाननस्वराभिघात पाटिततमोवारणकुम्भस्थलनिर्गच्छदच्छतद्रुधिरसेकशोणमुक्ताफलकल्पेनामुना त्रैलोक्यमेव व्यापारेण सह कमलान्यप्युन्मीलितानि।

मन्दोदरी- मिथः संघटमानकोकमिथुनवर्धमानानुरागेणेवारुणाय भगवते भास्वते नम इति प्रणम्य तामेव कथां पप्रच्छ।

इसके पश्चात् वायु के पुत्र - अग्नि के द्वारा जलाए गये बाँसों की चट् चट् आवाज के सदृश, उसके (अग्नि) के द्वारा नष्ट किये गये जंगल की ध्वनि से दुःसह प्रभात की ध्वनि, प्रतिध्वनि के द्वारा इनके जागरण अवस्था में लाए जाने पर इनका मन उस कथा की ओर ही लगा हुआ था।

मन्दोदरी- प्रिय उसी कथा को कहिये।

विभीषण - तन्वि! पहले उदित हुए सूर्य को नमस्कार करो। यह आकाशमार्ग में प्रयाण के लिये होने वाले उत्सव में तिलक, दान इत्यादि मंगलकार्य करने में समुत्सुक जो पूर्व दिशा रूपी रमणी मानों उसके (लाल) वस्त्रों की कान्ति के प्रतिफलन से ही सर्वथा लाल रहने वाला होकर चारों ओर फैले हुए सम्पूर्ण (अन्धकार रूपी) कलुष को नष्ट कर रहा है। ओर भी - दिन रूपी सिंह की दहाड़ से फाड़ा गया जो अन्धकार रूपी हाथी का मस्तक स्थल उससे निकलने वाला जो स्वच्छ रुधिर उसके अभिषेक से लाल मुक्ताफल के समान (इस सूर्य) ने कमलों को भी खिला दिया।

मन्दोदरी - एक साथ रहने वाले चकवा चकवी के जोड़े में बढ़ते हुए

विभीषणः-

नतीश्चक्रे पूर्वा वनभुवि किरातेषु बहुधा
गिरा तेषां स्थातुं विषमतरशैलेषु वसतीः ।
तथाप्तैरित्येवं हितमिति निरुक्तेषु विमतीः
स्थितीरित्थं त्रासादकृत सिघरौलीनरपतिः । ।१। ।

वेणीभुजंगीरवधाय सद्या दानाद्विषामस्य मयूरपूरैः ।
मुक्तासुवक्त्रे शरदिन्दुमत्यप्रावृड्‌ययोद्बोधपराभवेन । ।२। ।

उन्निद्रा निशि विद्रुताऽहनि पराभूता द्वयोः सन्ध्ययोः ।
सन्तप्तान्तरभूषिता बहिरसत्प्रोन्मीलनाचक्षुषोः ।
सोत्कम्पा हृदि केवला पथि बलाद्वेगात् पदाम्भोजयो-
र्भार्या भाविनि भूधरेषु चरति त्रासादगौरीपतेः । ।३। ।

अनुराग के समान लाल भगवान् सूर्य को नमस्कार-- इस प्रकार प्रणाम करके उसने उसी कथा को पूछा।

सिंघरौली देश के राजा ने जंगल की धरती पर पहले किरातों के मध्य अनेक बार नमन किया, पुनः उनके कहने से ऊँचे नीचे पत्थरों पर निवास बनाया, पुनः 'आपके लिये यही हितकर है'- ऐसा कहे जाने पर उस विमति ने वहीं अवस्थिति की।१। ।

वहाँ पर दान के अद्वेषी राजाओं की स्त्रियों को मयूर की आवाज ने तथा सर्प के समान लम्बी काली चोटी ने वर्षा का बोध कराया तथा बुझे हुए चेहरे से जागकर सुन्दर चेहरे पर ठण्डी पूर्णिमा की आभा ने शरत्काल की प्रतीति कराई। ।।२। ।

रात में नींद से विहीन होकर, दिन में भागती हुई पराजित होकर, दोनों सन्ध्याओं में सन्तप्त अन्तःकरण वाली होकर, आँखें खोलने पर गलत दृश्यों के देखने वाली होकर, हृदय में कम्पन के साथ (राजा की) स्त्री पर्वत के रास्तों में अगौरीपति के डर से बल तथा वेगपूर्वक अपने चरण कमलों से चली जा रही है।३। ।

कोई शत्रु इसकी स्त्री को तोते के द्वारा काटे गये अधरोष्ठ वाली के रूप

निर्दष्टमधरे शुकेन कुचयोर्बिल्वस्फुरत्कण्टकैर्

उद्भिन्नाश्रुवदस्त्रनिर्झरजलै र्लुप्ताजनां चक्षुषोः ।

दृष्ट्वा कश्चिदरातिरस्य वनितां स्वीयां परा संगमं

मुग्धे शंकितवान् निलीय निवसन्नाशान्तशैले मुहुः ।।४।।

युगपदभिहतानां डिण्डिमानां प्रजाते

ध्वनिरयमुदभूद्यो भूयसाडम्बरेण ।

सुतनु स चरणाद्रिस्थायिनो भीषयित्वा

प्रथमजलधिवेलागर्भनिष्ठांश्चकार ।।५।।

बिम्बं मत्वाधरमभिमुखं वक्त्रपीयूषभानो-

रागच्छन्तीर्ननु शुकततीः सन्निरोद्धुं हठेन ।

चित्ते या सौकरमिह पुनः पद्ममत्या निरुद्धा-

रण्ये गुंजन्मधुपतिकरैस्तद्विषद्राजयोषाः।।६।।

में देखकर, बिल्वसदृश स्तनों में रोमांच देखकर, आँखों से झर झर गिरते हुए आंसू से पुछे हुए अंजन वाली के रूप में देखकर, इसके साथ बार बार संगम की इच्छा से अशान्त पर्वत पर छिप कर निवास करता है। ।।४।।

सुतन! एक साथ बजाए गये नगाड़ों के अतिभीषण आडम्बर के द्वारा जो ध्वनि उठी उसने चरणाद्रि में रहने वाले लोगों को डराकर उनमें 'प्रथम मेघ के आने का समय हो गया' - यह मति उत्पन्न कर दी। ।।५।।

अमृतसूथरूपी चेहरे के अधरोष्ठ को (लाल) बिम्बफल समझकर आती हुई तोतों की पंक्ति को शत्रु राजाओं की स्त्रियों ने (महलों में) जिस आसानी से हटाया था, अब वे जंगल में गूँजते हुए भौरों से उतने ही हठ या कठिनाई से त्राण पा रही हैं। ।।६।।

हे सुमुखि! शत्रुओं की हिरणियों के समान आँखों वाली स्त्रियों के गर्भ के अस्तित्व से विरोध रखने वाला जो एक साथ पीटे गये नगाड़ों का भीषण शब्द हुआ, उसने रोहतास देश में विजयगिरि में बैठे हुए अस्त्री या अस्त्र वाले सैनिकों को डराकर शीघ्र ही (भगा दिया)।

अरिहरिणदृशां यो गर्भसत्ताविरोधी

युगपदभिहतानां डिण्डिमानां स्वनोऽभूत्।

विजयगिरिनिषण्णानस्त्रिण स्त्रासयित्वा

सुमुखि सपदि सोचेद्रोहतासे बभूव।।७।।

एणीदृशो यवनभूमिभुजां सवेणी-

रासज्य तच्छिखरलम्बमहाद्रुमेषु।

लम्बास्ततोऽवनितलायदृशां त्रिशंको-

राप्तान्बीजमिह तद्भयतोऽन्यदस्ति।।८।।

मन्दोदरी- प्रिय! येषामेषां देशानां दुरवस्थितिरुदाहृता तत्पूर्वतनानां देशानां का कथा।

विभीषणः- तद्देशभवा हि प्रभवोऽपि तदीयास्सेवका एव। कदाचित्तु दण्डभयादुज्झितसाम्राज्यभुवो निकटनिषण्णासु दरीषु वन्यैः कन्दमूलफलादिभिः शरीरवृतिं निर्वर्तयन्तो विषण्णप्राया व्यवतिष्ठन्ते। तथापि कारणस्वभावाहितां दुरवस्थितिमाकर्णय-

स्तनतटस्फुटपाणिपुटाहते-

र्द्रुतगतेश्च दिगन्तवनेष्वपि।

यवन राजाओं की हिरणियों के समान आँखों वाली स्त्रियाँ जो अपनी चोटी को बाँधकर पर्वतशिखर के लम्बे महान् वृक्ष पर खड़ी रहीं, उनके राजाओं को भय के अलावा और क्या हो सकता है। ।।८।।

मन्दोदरी - प्रिय! आपने जिन देशों की यह दुरवस्था बताई है, उससे पूर्व के देशों का क्या हाल है।

विभीषण - उस देश के लोग भी समृद्ध होकर भी उसके (वीरभद्र) के सेवक ही हैं। कभी कभी दण्ड के भय से अपने साम्राज्य की धरती को छोड़कर निकट में अवस्थित गुफा में जंगली कन्द, मूल, फल आदि के द्वारा अपने शरीर का जीवन निभाते हुए दुखी बने रहते हैं। उनके स्वभाव के कारण ही होने वाली दुरवस्था का वर्णन सुनो-

मुखरता न भखार महीभृतः ।।९।।

वनान्तः प्रविशन्तीनां विद्धाभिस्तरुकण्टकैः।

भखारहरिणाक्षीणांकबरीभिरभूद्दृशा ।।१०।।

सहजफल्गुतया न पदं रुषो निजसुहृत्करक्लृप्तकरा अपि ।

ननुपरम्परयाऽ पितदीश्वराः प्रविजहुर्द डकोरमकारणम् । ११।।

वासस्त्वग्भिस्तरूणां गिरिशिखरशिखामन्दिरं भक्ष्यजातं

वन्यं मूलादि यासामिह सहजतरं भिल्लधम्मिलिनीनाम् ।

तासामप्यस्य यात्रा समसमयहतानेकनिःसानजन्मा

निःस्वानः कांचिदन्यामकृत सुनयने दुर्दशां दुस्सहांसः ।।१२।।

मन्दोदरी- प्रिय! कथय रोहितासाग्रिमदेशवृत्तान्तम् ।

अयं कस्य साहाय्यमाधास्यतीति स्फुरत्संशयानां तदुर्वीगतानाम् ।

प्रतिष्ठानभूमीभुजांमुद्गलानांतदाकर्णनेऽभूत्प्रमोदोविषादः।।१३।।

अपने स्तनों को स्पष्टतः अपने हाथों से छिपाने पर भी, विभिन्न दिशाओं में फैले हुए जंगलों में तीव्र गति से भागने पर भी भखार नरेश की अपनी स्त्री को रोकने के प्रति वाणी नहीं निकली।।।९।।

अपनी बड़ी चोटियों के साथ वन के अन्दर घुसने वाली भखार देश की हिरणी के समान आँखों वाली स्त्रियों की पेड़ों के कांटों से बिंध जाने के कारण धरती को न देख पाने की स्थिति पैदा हो गई।।।१०।।

सामान्यतः निरर्थक होने से रोष का स्थान न बनने पर भी, अपने मित्रों का (सहायता वाला) हाथ प्राप्त करने पर भी छोटे राजाओं ने परम्परा से (कोई स्पष्ट) कारण न होने पर भी अपने राज्य को छोड़ दिया।।।११।।

जिन भीलों की स्त्रियों का पेड़ों की छाल का कपड़ा पहनना तथा पर्वत शिखर की चोटियों में प्राप्त जंगली कन्द, मूल आदि खाना अतिसहज है, उनकी भी, हे सुनयने, यह समय की मारी हुई, भीषण ध्वनि - प्रतिध्वनि से परिपूर्ण यात्रा दुर्दशापूर्ण हो गई ।।।१२।।

मन्दोदरी - प्रिय! रोहतास देश का आगे का वृन्तान्त बताइये।

सम्भाराः सम्भ्रियन्तां प्रभुषु समुचिता यद्ययं स्यात् सपक्षे।

द्वैगुण्ये न क्रियन्तां समरसमुचिता यद्ययं स्याद्विपक्षः।

इत्थं तत्रैत्रयात्रोत्सवसमयभयाड्डिंडिमाडम्बराणा-

मासीदाकर्णनेन प्रतिमुखमसकृद्वाक्प्रचारोऽक्रमेण ।।१४।।

अस्मिंश्चावसरे स्वस्ति श्रीमदसीमभूमीवलयप्रख्यातमहिममहाराजकुमार श्रीवीरभद्रदेवानां प्रत्यर्थिपार्थिवशिरोलंकरणमणिमयूखालंकृतचरणारविन्देषु कामताधिनाथप्रणतिपरम्पराप्रापकं पत्रम्। विज्ञप्तिश्च-

गंगासागरसंगमावधि भवत्प्रत्यर्थिपृथ्वीभृतो

गत्वा वीरचयं निरुद्धगतयः पाथोधिनाग्रे ततः।

ब्रूमस्त्वां विरमाखिलक्षितिपते! यात्रोत्सवात् साम्प्रतं

यद्योत्थापयसे न चेत् पृतनया क्षोणीरजोधोरणी।।१५।।

इति पत्रहस्तः कश्चित् कविराजगाम। स पत्रं दत्वा कामाक्षायाः

उस धरती पर रहने वाले लोगों को तथा प्रतिष्ठान भूमि के शासक मुद्गलों को - 'यह (वीरभद्र) किसका सहायक होगा' इस प्रकार का संशय होने पर (उनके विरुद्ध उत्तर) सुनने पर उनका प्रमोद विषाद में बदल गया। ।।१३।।

(वीरभद्र की) विजय यात्रा के समय नगाड़ों की भयपूर्ण आवाज को सुनकर कोई पक्ष यह था कि 'राजाओं' को इतने बड़े आडम्बर का सम्भरण उचित है' दूसरा पक्ष यह था कि युद्ध में अपनी द्विगुण उन्नति के लिये इस प्रकार का आडम्बर नहीं करना चाहिये - इस प्रकार हर मुख से अनेक प्रकार की वाणी का प्रचार निरन्तर होता रहा ।

इस अवसर पर करधनी रूपी असीम भूमि के लिये प्रख्यात महिमा वाले महाराज कुमार श्री वीरभद्रदेव के शत्रु राजाओं के सिरों के अलंकरण की मणियों की किरणों से विभूषित चरणकमलों में कामताधिनाथ कीं प्रणाम की परम्परा को पहुंचाने वाला यह पत्र है। निर्देश है कि-

हे सम्पूर्ण धरती के पति! आपके शत्रु राजा गंगा-सागर के संगम तक भागकर अब रुकी हुई गति वाले हो गये हैं। अतः हम कहते हैं कि इस समय समुद्र के आगे यात्रा के उत्सव को विराम दो। यदि अब भी शस्त्र उठाते हो

प्रसादेन सहोपहारं समर्प्य च-

श्री संश्रयोऽर्थिमधुपव्रजतोषभूमि-

दोंषाकरोद्भव विनोद पराङ्मुखी च।

मित्रोदयप्रणयिनी तव वीरदृष्टिः

कस्मान्न पंकज तुलामतुलां तनोतु।।१६।।

इति पद्यं पपाठ। उपवेशकादिष्टे स्थान उपविष्टः समाचारं च पृष्टः।

नीव्या संजितवामबाहुलतिकाजस्रस्रुतास्रक्षरद्-

वक्षोजार्पित कुंकुमार्भककरन्यस्तान्य हस्तांगुलिः।

मार्गे क्वापि गिरौ मया नरपते दृष्टा विसृष्टोत्सवा

सद्यस्त्यक्तपदातवैरिवनितारण्ये स्खलन्ती मुहुः।।१७।।

इति पपाठ।

तो कहीं तुम्हारी सेना से यह धरती बल की उद्भट परम्परा से विहीन न हो जाय ।।१५।।

इस प्रकार पत्र हाथ में लेकर कोई कवि आया। उसने पत्र देकर तथा कामाक्षा के प्रसाद के साथ उपहार को समर्पित करके-

श्री का स्थान, याचकरूपी भौरों के समूह के लिये सन्तोष का स्थान, चन्द्र का उद्भव करने वाली, व्यर्थ की ठिठोली से पराङ्मुख, मित्रों की वृद्धि को प्रसन्नता देने वाली तुम्हारी यह वीरदृष्टि क्यों न अनुपम कमल के तुल्य बनी रहे ।।१६।।

इस प्रकार का पद्य पढ़ा। अनुचर द्वारा आदिष्ट स्थान में बैठा तथा समाचार पूछा।

हे नरपते! मैने कमर की गाँठ पर बाँई बाहुलता रखे हुए तथा निरन्तर बहते हुए आँसुओं से भीगे हुए स्तनों पर कुंकुम वाले दूसरे हाथ की उंगली रखे हुए पर्वत के किसी रास्ते में अपने सभी उत्सवों को छोड़ देने वाली, जंगल में पैदल शत्रु राजा के द्वारा छोड़ दी गयी कोई बार बार लड़खड़ाती हुई स्त्री अभी २देखी है ।।।१७।।

ऐसा पढ़ा।

स्वस्ति श्रीमद्बघेल कुलावतंस महाराजाधिराज श्री रामचन्द्र देवात्मज श्री यशोदानन्दन युवराज श्री वीरभद्रदेव चरिते मिश्र श्री बलभद्रात्मज विजयश्री गर्भ सम्भव-सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतनभट्टाचार्य श्री पद्मनाभविरचिते तृतीय उच्छ्वासः समाप्तः।

बघेल वंश के भूषण महाराजाधिराज श्री रामचन्द्र देव के पुत्र श्री यशोदा के पुत्र श्री वीरभद्रदेव के चरित का श्री बलभद्र मिश्र के पुत्र विजय श्री से उत्पन्न सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन -भट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचित तृतीय उच्छ्वास समाप्त हुआ।

❑

चतुर्थ उच्छ्वासः

निवेद्यायोध्यायां प्रहितमथलंकाधिपतिनो-
पहारंरामायप्रथमगुरवे वेदविदुषाम्।
करौ मिश्रौ कृत्वा शिरसि जय देवेति कथयन्
पुरस्तस्थौ कश्चित् प्रणिहितमना राक्षसपतेः।।१।।

स च वीर! आकलय रघुनाथचरण-कमलमिलितां पारिजात-कुसुमललितां गतदशाननदरेणश्रीरामनवमीयात्रार्थमागतेन पुरन्दरेणोपहारीकृतां प्रसादमालाम्। विभीषणोऽभ्युत्थाय तामंजलिना गृहीत्वा सानन्दः शिरसि निधाय-

जय जय जगदीशाशेषदिक्चक्रराज-
द्रजतरुचिरकीर्ते ! जानकीप्राणनाथ!
त्रिदशपतिकिरीटस्पष्टमाणिक्यरोचि-
प्रकरपरिचितांघ्रे सूर्यवंशावतंस ।।२।।

लंका के अधिपति के द्वारा भेजे गये उपहार को अयोध्या में वेदों के विद्वानों के प्रथम गुरु राम के लिये निवेद्वित करके कोई सावधान (अनुचर) सिर में हाथ जोड़कर 'देवता की जय हो' इस प्रकार कहते हुए राक्षसपति (विभीषण) के आगे उपस्थित हुआ । ।।१।।

उसने (कहा कि) वीर! रघुनाथ के चरणकमलों से छुई गई, पारिजात के फूलों से सुन्दर, दशानन रावण के प्रति भय समाप्त हो जाने के कारण रामनवमी यात्रा पर आए हुए इन्द्र के द्वारा उपहार दी गई प्रसाद माला को ग्रहण करो। विभीषण उठकर आनन्दपूर्वक अंजलि से सिर में रखकर-

जगदीश! सम्पूर्ण दिशाओं में विराजने से चांदी के समान शोभित कीर्ति वाले जानकी के प्राणनाथ! इन्द्र के मुकुट के स्पष्ट माणिक्य की प्रभा समूह को जिनके चरणों ने जान लिया है, ऐसे! सूर्य वंश के आभूषण! आपकी जय हो ।।२।।

जब भी हृदय से पापकर्म के द्वारा उठी हुई वायु के साथ खेद से बाहरी

यदा हृदयदुष्कृतानिलसमुत्थखेदानिलाद्

बहिः स्थिति समीक्षया किमपि कारणं कांक्षसि।

जगत्त्रयधुरन्धरं जलचरावलीबन्धुरं

तदा यदुपुरन्दरं भुवनसुन्दरं भावय ।।३।।

रुषा दशमुखान्तकं विजितनीरजं चक्षुषा

त्विषाऽनुगतनीरदं विरचितस्तवं विद्विषा।

मनो यदि विनोदभूर्भवितुमिच्छसि त्वं तदा

रणापहतदूषणं भुवनभूषणं भावय ।।४।।

दशमुखविमुखस्य या पयोधे-

स्तटभुवि काऽपि तमालशाखिनीला।

नयनपथमगान्ममाधुना सा

मनसि चकास्ति रघूद्वहस्य मूर्तिः ।।५।।

दृष्टा पूर्वं सजलजलदाकारचारुः पयोधेर

तीरे लंकानिहितनयना या मयात्यादरेण।

स्थिति की समीक्षा करते हुए उसका कारण जानना चाहते हो, तभी तीनों लोकों में सर्वोच्च, जलचरावली से युक्त, मनोहर, इस लोक में सबसे सुन्दर यदुश्रेष्ठ का स्मरण करो ॥ ।३।।

हे मन! यदि तुम विनोद का स्थान चाहते हो तो अपने क्रोध से दशमुख रावण का अन्त करने वाले, आँखों के सौन्दर्य से कमल को पराजित करने वाले, दीप्ति से मेघ का अनुकरण करने वाले, विद्वेषी शत्रुओं के द्वारा भी स्तुत, दूषण को विनष्ट करने वाले सम्पूर्ण लोक के भूषण को याद करो। ।।४।।

दशमुख रावण से विहीन समुद्र के तट वाली धरती पर कोई तमाल वृक्ष के समान श्याम जो रघुवंश वाले (श्रीराम) की मूर्ति मेरे आँखों के सामने आई थी, वह इस समय मन में प्रकट हो रही है। ।।५।।

मैने जल वाले मेघ के आकार के समान सुन्दर लंका में आँखें लगाने वाली, ध्यान में लगी हुई, दशमुख रावण के उत्साह से राज चरित्र वाली जिस रामचन्द्र की मूर्ति को समुद्र के तट पर अत्यन्त आदर से देखा था, वह मेरे मन

ध्यानाकृष्टा दशमुखमुखोत्साहराजचरित्रा

चित्ते चित्रीभवतु मम सा रामचन्द्रस्य मूर्तिः ।।६।।

दीने दयाल्पबलशालिनि यत्र पातो

ऽनाथे च पातकिनि निश्चलबन्धुभावः ।

ब्रह्माण्डभाण्डजठरे निखिलेऽपि विज्ञैः

सम्भाव्यते रघुपतेरथ यस्य कस्य।।७।।

इत्यादि पठित्वोपविष्टः ।

मन्दोदरी - प्रिय! कथय रघुपतेः कानिच्चित्राणि चरित्राणि ।

विभीषण - साधु साधु कान्ते! समाकलय-

कलिकल्मषपारुष्यपराभूतप्रभावप्राणिगणशरण्यस्य, समर सीम-भीमाकृतेरपि निसर्गमधुरस्वभावस्य, समुद्दण्डदोर्दण्डाकृष्टकोदण्डमण्डलनिर्गतमार्गणयोन्मृष्टदर्प्यप्राप्तपातालदैतेयवधूपगीतयशोराशिराजीव-यूथसुधाभ्रमससम्भ्रमफणिपतिफणासहस्रकम्पचलद्भूचक्ररक्षणाकुल-दिग्गजकुलचीत्काराहतचित्तदिक्पालावलीस्तूयमानचरितस्य मया निवेद्यमानानि

में कौतुक उत्पन्न करे । ।।६।।

दीनों पर दया, अल्प बल वालों पर सहायभाव, अनार्य तथा पापी लोगों पर बन्धुभाव (इस प्रकार का) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रूपी भाण्ड में रघुपति के अलावा (अन्य किसका चरित्र) विज्ञों के द्वारा सम्भावित किया जा सकता है। ।।७।।

इत्यादि पढ़कर बैठ गया।

मन्दोदरी - प्रिय! उन रघुपति के कुछ विचित्र चरित्रों को कहिये।

विभीषण - अच्छा, अच्छा प्रिये! सुनो- कलि के दोष की कठोरता से पराजित प्राणियों को शरण प्रदान करने वाले, युद्ध की सीमा में भयंकर आकृति वाले होकर भी स्वभावतः मधुर स्वभाव वाले, उठे हुए बाहुदण्ड से खीचें गये धनुष से निकले हुए बाणों के द्वारा विनष्ट अहंकारी पातालस्थित दैत्यों की जो स्त्रियां उनके द्वारा पाई गई कमल सदृश जो यशो राशि, उसको सुधा समझ लेने के कारण घबड़ाए हुए शेषनाग के हजारों फनों का जो प्रकम्पन, उसके कारण धरती के हिलने से रक्षा के लिये व्याकुल जो दिग्गज तथा उनके द्वारा किये गये चीत्कार से घबड़ाए हुए दिक्पाल उनके द्वारा जिसकी स्तुति की गयी

कानिचिच्चित्ततापहरणानि तानि।

पुरामुना कौशिकनोदितेन गतासुराशुप्रथिता कृतिकृता
मखावरोधोद्यमशालिविक्रमा न गोपमाना हरिणाक्षिताडका।।८।।

अनेन राजन्यसमूहभंजन-
स्फुरत्कुठारो जमदग्निनन्दनः।
पुरारिकोदण्डसहस्रखण्डन
प्रभूतकोपसहसा पराजितः।।६।।

घनमिव पवनो वनं कृशानुं
जलमिव तिग्मरुचिर्गजं मृगेन्द्रः।
क्षणमिव सगणश्चरं स्मराभो
रणचतुरो रघुनन्दनश्चकार।।१०।।

इत्यभिधाय-
मारीचमारणकृतो दशकण्ठकण्ठ-
कूटाटवीपटुकुठारपराक्रमस्य।

है, इस प्रकार के रघुपति के विषय में मेरे द्वारा चित्त के ताप को नष्ट करने वाले वचनों को सुनो।

पुराकाल में कौशिक विश्वामित्र के द्वारा प्रेरित, सुकृत करने वाले (श्रीराम के द्वारा) यज्ञकार्य में अवरोध के कार्य में विक्रम वाली, शीघ्र विख्यात होने वाली, हिरणी के समान आँखों वाली ताड़का नहीं बचाई गयी तथा प्राणविहीन की गई ।।८।।

क्षत्रिय समूह के विनाश के लिये चलने वाले कुठार वाले जमदग्नि पुत्र परशुराम इस शिव जी के धनुष के हजार टुकड़ों में विखण्डन से उत्पन्न प्रभूत क्रोध की शक्ति से पराजित किये गये।।६।।

जिस प्रकार वायु मेघ को (दूर बहा ले जाती है), अग्नि वन को (नष्ट कर देती है), प्रखर किरणों वाला सूर्य जल को, मृगेन्द्र सिंह हाथी को तथा शिव रात्रिचर राक्षसों का शीघ्र ही (विनाश कर देते हैं), उसी प्रकार कामदेव के समान

रामस्य सुन्दरि! चरित्रनिवेदनाय

शक्तःकथंकथयतां ममयोनिरेषः।।११।।

तदसावेवायोध्यायां दृष्टादृष्टाश्च पथि कौतुककरीः काश्चन व्यवस्थाः कथयत्वित्युक्त्वा रघुपतिप्रसादप्रापकतच्चरणारविन्दनिरीक्षणाहितप्रभाव प्राप्तवाक्प्रागल्भ्य! कथय काश्चन कथा रामनवमीसम्बन्धिसमाचारप्रापिकाः प्रापिकाश्च पथि दृष्टनामाश्चर्यसमर्थकाणां समाचाराणामित्युवाच। स च कायवाङ्मनोभिः श्रीमतो रघुपतेश्चरणसरोजे प्रणम्य, प्रणम्य च स्वपतेर्विभीषणस्येत्थमुवाच-

अयोध्यायामयोध्याधिपतेस्तस्मिञ्जन्मदिने समागतानां भूतलवर्तिनां प्राणिनां गणनायां द्विसहस्रजिह्वो द्विजिह्वाधिपतिरपि न समर्थः। कांश्चित्तु दैवतादीन् मयोच्यमानान् निशामय।

सम्प्राप्तजंगमवपुर्वृषभच्छलेन

कैलासशैलमधिरुह्य सहाद्रिपुत्र्या।

आभा वाले रण में चतुर रघुनंदन ने किया।।।१०।।

ऐसा कह कर-

हे सुन्दरि! मारीच का वध करने वाले, दशकण्ठ रावण के कंण्ठ रूपी स्थिर जंगल में अपने कुठार का पराक्रम दिखाने में चतुर राम के चरित्र का वर्णन करने में मुझ जैसे जन्म वाला किस प्रकार समर्थ हो सकता है।।११।।

तो यही अयोध्या में देखी अनदेखी बातें तथा रास्ते में कौतुक उत्पन्न करने वाली घटनाओं को कहे - ऐसा कहकर हे रघुपति की प्रसन्नता को प्राप्त कराने वाले! उनके चरणकमलों के निरीक्षण से प्रभावपूर्ण वाणी की चतुराई को प्राप्त करने वाले! रामनवमी से सम्बन्धित समाचारों को प्रदान करने वाली तथा रास्ते में देखकर आश्चर्य पूर्ण समाचारों को कहो - ऐसा कहा। उसने शरीर, वाणी तथा मन से रघुपति के चरणकमलों को प्रणाम करके तथा अपने पालक विभीषण को प्रणाम करके इस प्रकार कहा-

अयोध्या में अयोध्या के अधिपति के उस जन्मदिन के समय आए हुए धरती के प्राणियों की गिनती में दो हजार जीभ वाले सर्पों के अधिपति शेषनाग भी समर्थ नहीं है। फिर भी मेरे द्वारा कहे गए कुछ देवताओं के वर्णन को सुनो-

श्रीशंकरोलकनिरुद्धयुगान्तवह्नि

ज्वालाकलापरुचिरा कृतिराजगाम।।१२।।

व्योमालिस्वरजवसकम्प सटाछटाभिः

स्वीकृत्य रत्नभरभारमुपायनाय ।

क्षुब्धो महार्णवजल प्रसरत्तरंगः

श्री जाम्बवानपि समाजमुपाजगाम।।१३।।

पद्मानि मानसभवानि करे निधाय

हैमानि मैथिलसुताकुतुकाय धीरः।

नाथं रघूद्वहमुदीक्षितुमाजगाम

जाम्बूनदाचल इवानुचरो हनूमान्।।१४।।

क्लृप्तामुपायनतयाऽभयलाभतुष्ट्या

शोभाशुभास्रजमिवामलपंकजानाम्।

वृषभ या बैल के बहाने गतिशील प्राणी का शरीर धारण करने वाले, अपने मस्तक के द्वारा युग को अन्त करने वाली अग्नि को रोक लेने वाले, अग्नि की लपट के समान दीप्ति वाले श्री शंकर अद्रिपुत्री पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर चढ़कर (अयोध्यामें) आए ।।१२।।

आकाश में ध्वनि के समान तीव्र वेग के कारण प्रकम्पित सटा की शोभा वाले, महासमुद्र के जल में घूमने से प्रसारित तरंगों वाले चंचल जाम्बवान् भी रत्नभार को उपहार के रूप में प्रदान करने के लिये स्वीकार करके (अयोध्या के)समाजमेंआए।।१३।।

सोने के पर्वत सुमेरु के समान सेवक हनुमान् भी मैथिल जनक की पुत्री सीता के कौतुक के लिये मानसरोवर में होने वाले स्वर्ण कमलों को हाथ में लेकर रघुवंश के नाथ (श्री राम) के दर्शन के लिये (अयोध्या में) उपस्थित हुए।।१४।।

हजार आंखों वाले महेन्द्र ने हाथी से उतर कर अभय लाभ की तुष्टि के साथ उपहार के रूप में बनाई गई अत्यन्त शोभित निर्मल कमलों की माला को दौड़कर राघव के चरणकमलों में (प्रदान किया) ।।१५।।

अस्यां [illegible] महेन्द्रः-

चित्तेऽथराघवपदाम्बुजयोर्जवेन ।।१५।।

मरालयानस्तरसाऽभ्युपेत्य सरस्वतीणद्धमनोविलासः।

चतुर्मुखो वेदचतुष्टयेन स्तुतीचकाराक्रमवाक्प्रचारः।।१६।।

स्नात्वा सरय्वां चरणारविन्दपूजां विधायामरशाखिपुष्पैः।

स्तुतीरयोध्याधिपतेरमुष्य सप्तर्षयः सप्तविधा वितेनुः।।१७।।

कृताभिषेकःसरयूजलेन मन्दाकिनीमन्दतराभिलाषः।

गुणानुवादेन रघूद्वहस्य गुरुर्गिरा गौरवमाततान।।१८।।

शृण्वत्सुदोः शालिषु दैवतेषु पुरन्दराग्निप्रमुखेषु सत्सु।

तदाहितवीररसानुगानि कविःकवित्वं कलयाम्बभूव।।१६।।

तथा हि-

एकेनापि शरेण वक्षसि रिपुं भित्वा कृतान्तातिथी-

कर्तुं शक्तिमता त्वया दशशिरः छेदस्य वाजं पुनः

सरस्वती पर लगे हुए चित्त वाले, हंस की सवारी वाले चतुर्मुख ब्रह्मा ने शीघ्रता से उपस्थित होकर क्रम रहित वाणी से चारों वेदों से स्तुति की ।।१६।।

सप्तर्षियों ने सरयू में स्नान करके अमर वृक्ष के पुष्पों से चरणकमल की पूजा करके इन अयोध्या के अधिपति की सात प्रकार से स्तुति की ।।१७।।

गुरु बृहस्पति ने मन्दाकिनी में कम अभिलाषा रखते हुए सरयू के जल से स्नान करके अपनी वाणी से रघुवंश के (भूषण श्रीराम) के गुणानुवाद से उनके गौरव का विस्तार किया ।।१८।।

पुरन्दर या इन्द्र, अग्नि प्रमुख सुन्दर भुजाओं वाले देवताओं के मध्य किसी कवि ने वीर रसपूर्ण (उनके विषय में) कविता उपस्थित की।।१६।।

जैसे कि-

हे राघव! वक्ष में एक ही बाण से शत्रु को मार कर यमराज का अतिथि बनाने की शक्ति वाले तुम्हारे द्वारा दस सिर वाले रावण के विनाश के समय इसके श्राद्ध के पिण्ड के लिये सभी दिशाओं में रहने वाले इसके पति तुरन्त

एतैर्दिक्षुगतैर्वधेऽस्य प्रथयस्तासां स्फुरत्प्रत्ययाः

सद्यः सन्त्विति राघवावितथसत्सन्धाभिसन्धिस्तव।।२०।।

सद्यः पिनाककरकार्मुकभंगजात-

तीव्रध्वनिक्षतसमाधितया सरोषः।

कृत्वापि बाहुजभटारभटीप्रमोषं

त्वत्तः पराभवमवाप भृगुप्रवीरः।।२१।।

छित्त्वा हैहयमुख्यबाहुजवनीं दत्त्वा द्विजेभ्योऽवनिं

कृत्वा ता नवनीतकोमलयशोयुक्ताश्च दिक्कामिनीः।

श्रुत्वा रुद्रधनुर्द्विधा विधिविधा स्फूर्जद्धनुःप्रक्रमान्

त्वामासाद्य भृगूद्वहेन समरे कुण्ठःकुठारःकृतः।।२२।।

रुष्टस्य भंगे हरकार्मुकस्य त्वयाऽततस्योग्रकुठारपाणेः।

रौद्रेऽनिरुद्धे भृगुनन्दनस्य तत्प्रक्रमो वीररसक्रमोऽभूत्।।२३।।

रहें (इस विचार से आपने अधिक समय बाद मारा), यह आपकी सत्य के प्रति अभिसन्धि ही है ।।२०।।

शीघ्र ही पिनाक अर्थात् धनुष हाथ में लेने वाले शिव के धनुष के भंग से उत्पन्न तीव्र ध्वनि के सम्पादन से रोषपूर्ण भुगुवीर परशुराम बाहुज अर्थात् क्षत्रिय सैनिकों के साथ बहुत बल दिखाने पर भी तुमसे पराजय को प्राप्त हुए ।।२१।।

हैहय वंश के मुख्य क्षत्रिय समूह को नष्ट करके, द्विजों को धरती प्रदान करके, दिशा रूपी कामिनी को नवनीत के समान कोमल, यशःपूर्ण बनाकर, रुद्र के धनुष का अनेक प्रकार का उपक्रम सुन करके भी भृगुवंशी परशुराम के द्वारा तुमको प्राप्त कर लेने के बाद अपना कुठार कुण्ठित कर लिया गया। ।।२२।।

आपके द्वारा शिव के धनुष - भंग के पश्चात् रुष्ट होकर आए हुए, रुद्र से भी न रुकने वाले, कुठार हाथ में लेने वाले भृगुनन्दन परशुराम का उपक्रम वीर रस से परिपूर्ण हुआ ।।२३।।

अमरनाथ या इन्द्र के स्तम्भसदृश बाहुदण्डों से वेगपूर्वक फेंके गये वज्र का आघात जिस पर पुष्प का प्रपात जैसा प्रतीत होता है, पर्वत शिखर के

अभवदमरनाथस्तम्भदोःस्तम्भवेग-

प्रहितकुलिशघातो यत्र पुष्पप्रपातः।

शिखरनिकररुद्धाकाशविन्ध्यप्रकाशः

स खलु समरवध्यःकुम्भकर्णस्तवैव।।२४।।

समरभुवि निकृत्तैर्हेलया त्वच्छरोघै-

रघुतिलक सरोषा एकमेकं गृहीत्वा।

शतमखदहनाद्याःकुर्वतेऽद्यापि लीला

दशवदनशिरोभिः कन्दुकैर्दिक्तटीषु ।।२५।।

अस्मिन्नवसरे-

विष्णुःपयोधरपयोधरबन्धुरश्री-

र्विद्युत्त्विषाम्बुधिभुवा परिशीलितांकः।

तेनाथ मैथिलसुतासहितेन तुल्यः

पक्षिप्रशस्तमधिरुह्य समाजगाम।।२६।।

अभ्यागतेन भरतेन समप्रभाव-

वैषाकृतैः सहसुरैस्त्रिजगन्निवासे।

समूह से घिरे हुए आकाश में विन्ध्यसदृश आभा वाला (वह) कुम्भकर्ण तुम्हारे द्वारा ही संग्राम में वध्य हो पाता है ।।२४।।

हे रघुवंश के तिलक! संग्रामभूमि में तुम्हारे बाण समूह से दशमुख रावण के सिरों के अनायास ही काटे जाने पर (अब) इन्द्र इत्यादि दिशाओं के तट पर कन्दुक से एक एक को पकड़कर (मारने की) लीला करते हैं ।।२५।।

इस अवसर पर-

जल से भरे मेघ की शोभा वाले, विद्युत् के समान दीप्ति वाली समुद्र की पुत्रीं लक्ष्मी को अपने अंक के साथ रखे हुए विष्णु प्रशस्त पक्षी गरुड़ पर बैठकर इस प्रकार आए, जैसे मैथिलसुता सीता के साथ उपस्थित हुए हो ।।२६।।

शिव, महेन्द्र चतुर्मुख ब्रह्मा आदि विबुधगण तीनों लोकों में निवास करने वाले देवताओं के साथ अभ्यागत भरत के समान प्रभाव वाले, सुन्दर वेष वाले

उद्दिश्य तौ शिवमहेन्द्रचतुर्मुखाद्याः
पूजाविधासु विबुधा द्विविधा बभूवुः ।।२७।।

सजलजलदभासोर्विद्युदुद्दामरोचि-
र्जनकजलधिपुत्रीभूषितोत्संगभाजोः ।
कनकनिकषराजद्वाससोरेतयोः कः
प्रकृतिविकृतिभावंतत्र वक्तुं समर्थः ।।२८।।

आलोक्य तुल्यतनुवेषमहानुभावे
चैतौ पयोधिधरणीसुतयोस्तदानीम् ।
हित्वांकवृत्तिमनयोरविवेकभीते-
रासीन्मिथो न परिरम्भविधौ प्रवृत्तिः।।२९।।

पृष्ठनद्धशरधिर्जटाधरःस्कन्धसक्तपरशुःश्रुतीःपठन् ।
आजगामकुतुकीदिदृक्षयारौद्रशान्तरुचिरोभृगूद्वहः ।।३०।।

- (श्रीराम तथा विष्णु) को उद्देश्य करके पूजा के लिये दो प्रकार के हो गये ।।२७।।

जलपूर्ण मेघ के समान कान्ति वाले, विद्युत् के समान प्रखर दीप्ति वाले जो जनक तथा समुद्र, उनकी पुत्री अर्थात् क्रमशः सीता तथा लक्ष्मी से भूषित गोद वाले, सोने की कसौटी के समान चमकते हुए वस्त्र वाले (श्रीराम तथा विष्णु में) कौन प्रकृति तथा कौन विकृति है- इसे बताने में कौन समर्थ हो सकता है ।।२८।।

उस समय इन समान आकार तथा वेष वाली को देखकर अविवेक से डरने वाले इनकी समुद्र तथा धरती की पुत्री अर्थात् लक्ष्मी तथा सीता को गोद में बिठाने के अलावा परस्पर अलिंगन में प्रवृत्ति नहीं हुई ।।२९।।

पीठ पर बाणों को रखने वाले, जटाधारी, कन्धे पर परशु या कुठार रखने वाले, (अन्दर से) रौद्र पर प्रकटतः शान्त शोभा वाले (परशुराम) वेद मन्त्रों का पाठ करते हुए कौतुकपूर्वक (श्रीराम को) देखने की इच्छा से उपस्थित हुए ।।३०।।

नाद्यापि मुञ्चति धनुः सशरं कुठारं

नक्षालयत्यरिचमूरुधिराक्तधारम्।

रौद्रश्शमे तदिह तिष्ठति गूढभावः

पाथोनिधेरिव जलेषु स वाडवाग्निः ।।३१।।

रुधिरमिव वमन्तं क्षत्रियाणां निपीतं

परशुमरुणवक्त्रं शोणितैरावहन्तम्।

सदसि तमिह दृष्ट्वा दैवतास्तत्र मुक्ता

भयचकितदृगन्ता के न सन्तापमापुः।।३२।।

धृष्टद्युम्नच्छलविरचितं द्रोणसंग्राममोक्षं

स्मारं स्मारं मुहुरिव रुषा ताम्रनेत्राम्बुजश्रीः।

मार्ष्टुं प्रायो यदुपतिपरान् भक्तिजानुग्रदोषा-

नश्वत्थामा रघुपतिपदे द्रष्टुमभ्याजगाम।।३३।।

समरभुवि कृतान्ताकारमास्थाय चक्रे

कदनमरिभटानां यः पुरः पाण्डवस्य।

वे (परशुराम) अब भी बाण सहित धनुष को तथा कुठार को नहीं छोड़ते। साथ ही उनके शत्रुओं की सेना रुधिर से सनी धारा से प्रक्षलित नहीं होती। इस प्रकार उसकी शान्ति में अन्दर से रौद्र गूढभाव वर्तमान रहता है, जिस प्रकार समुद्र के जलों में वाडवाग्नि निवास करती है ।।३१।।

क्षत्रियों के पिये गये रुधिर को उगलते हुए से, रक्त को धारण करने से लाल चेहरे वाले उन परशुराम को उस सभा में देख कर वहाँ विचरण करने वाले कौन देवता भय से चकित आँखों से सन्ताप को प्राप्त नहीं हुए ।।३२।।

धृष्टद्युम्न द्वारा संग्राम में छल से किये गये द्रोण के वध को मानों क्रोध से बार बार याद करते हुए लाल नेत्रों से रक्त कमल की शोभा वाले अश्वत्थामा, उग्र दोष वाले होकर भी यदुपति के ध्यान में लगे लोगों को क्षमा करते हुए रघुपति के चरण कमलों का दर्शन करने के लिए उपस्थित हुए ।।३३।।

युद्धभूमि में यमराज का आकार बनाकर जिसने पाण्डवों के समक्ष शत्रु

सपदि सदृशदृष्टिः शत्रुमित्रादिसृष्टौ
सदसि स खलु दृष्टः सत्कृपः श्रीकृपोऽपि ।।३४।।

अद्याप्येतन्निकृत्तप्रतिभटपटलीशोणिता पारनद्यां
सार्धंभूतैरतृप्तैरसुरचयचमूरक्तपनोत्सवेऽपि
स्नात्वा कृत्वा कपाले रुधिरमनुदिनं भैरवास्वाद्यमानं
भूयःफूत्कृत्य काली पिबति करिकरस्फारनालोदरेण ।।३५।।

सततमुदितबोधैरार्जिताबोधरोधै-
र्मुनिभिरनुगताध्वा वैदिके लौकिके च।
अपि च सह शुकेन प्रादुरासीत्तदानीं
सदसि स खलु वेदव्यासकृद् व्यासदेव ।।३६।।

दशमुखमधुहन्तृप्रीणनायेव वीणा
मनुदधदनवद्यातोऽद्य विद्याप्रवीणः।
मनसि वचसि काये भक्तिवर्त्मानुवर्ती
सदसि समुपतस्थौ नारदःपारदश्रीः।।३७।।

सैनिकों का विनाश किया, वे शत्रु तथा मित्र आदि के प्रति समान दृष्टि रखने वाले, शोभन कृपा वाले श्री कृपाचार्य भी शीघ्र ही सभा में दिखाई पड़े ।।३४।।

आज भी मारे गये शत्रु सैनिकों के समूह से रक्त वाली काली असुरों की सेना के द्वारा रक्तपान के उत्सव के समय, अतृप्त (अनुचरों) के साथ नदी में स्नान करके भैरव के द्वारा चखे गये खप्पर में लिए गये रुधिर को बार बार फूँक फूँक कर हाथी की सूंड के समान फूली हुई कमल की नाल के द्वारा पी रही है।३५।।

निरन्तर उत्पन्न होने वाले ज्ञान के द्वारा अज्ञानरूपी रुकावट को मिटाने वाले मुनियों के द्वारा जिनके वैदिक तथा लौकिक कार्यों वाले मार्ग का अनुसरण किया जा रहा है- इस प्रकार के वेदों का विभाजन करने वाले व्यासदेव शुकदेव के साथ उस समय सभा में उपस्थित हुए ।।३६।।

दश-मुख अर्थात् रावण तथा मधु राक्षस का विनाश करने वाले (क्रमशः श्रीराम तथा श्रीकृष्ण) को मानों प्रसन्न करने के लिए वीणा का धारण करने वाले

अपि च स निजशक्तौ स्थापयित्वा धरित्रीं

भरममरनुतश्रीराविरासीत्सरय्वाः ।।

अपृथगमलनालानेकपद्माभिरामः

कलितफणविभागः शेषनागस्तदानीम् ।।३८।।

हित्वा त्वां रघुपुंगवाननुमतिव्यावृत्तयात्रोत्सवं

विन्ध्याभ्युत्थितिरोधबन्धुरगतिं कुम्भोद्भवं वा मुनिम् ।

अस्मिञ्जन्मदिनोत्सवे रघुपतेस्तस्मिन्नयोध्यापुरे

गन्धर्वामरकिन्नरादिषु तदा के के न दृष्टामया ।।३९।।

युगपदखिलमेतद्विश्वमेकत्र दृष्ट्वा

नयनफलमनल्पं शीलयन्तः क्रमेण

सुखमधिकमवापुस्तत्र वैकुण्ठतोऽपि

स्तुतिमुखरमुखाब्जाः शारदा नारदाद्याः ।।४०।।

अनिन्दित विद्या में प्रवीण, मन वाणी तथा शरीर से भक्ति-मार्ग का अनुसरण करने वाले, पारे के समान स्वच्छ शोभा वाले नारद उस सभा में उपस्थित हुए ।।३७।।

और भी अपनी निज शक्ति से धरती को धारण करने वाले, देवताओं के द्वारा प्रणाम किये गये बृहस्पति की शोभा वाले, जुड़े हुए निर्मल नाल वाले अनेक कमलों के समान सुन्दर, अपने फनों को अलग अलग रखने वाले शेषनाग भी सरयू नदी के तट पर प्रकट हुए ।।३८।।

रघुपति के इस जन्म दिन के उत्सव के समय रघुकुल श्रेष्ठ (श्रीराम) की अनुमति से यात्रा को रोक देने वाले आपको (विभीषण) को छोड़कर विन्ध्यपर्वत के उत्थान को रोकते हुए मनोहर गति वाले, कुम्भ में उत्पत्ति वाले (अगस्त्य) को तथा गन्धर्व, अमर, किन्नर इत्यादि में से किन किनको मैंने नहीं देखा (अर्थात् सबको देखा ।।३९।।

इस सम्पूर्ण विश्व को एक साथ देखकर, नयन के सम्पूर्ण फल को क्रमशः प्राप्त करते हुए, स्तुति के लिए मुखर मुखकमल वाले सुन्दर नारद इत्यादि ने वैकुण्ठ से भी अधिक सुख को प्राप्त किया ।।४०।।

द्युलोक में बलि की पराजय से महेन्द्र के महोत्सव के समय गंगा नदी के

सुरधुनीव महेन्द्रमहोत्सवे बलिपराभवतःपरतो दिवि।

अहनि तत्र च पूज्यतमेऽमरैरमरयूथयुता सरयूरभूत्। ।४१। ।

स्वस्ति श्रीमद्बघेलकुलावतंसमहाराजाधिराज श्री रामचन्द्रदेवात्मज श्री यशोदानन्दन युवराज श्रीवीरभद्रदेव चरिते मिश्र श्री बलभद्रात्मज विजयश्री गर्भसम्भव सकलशास्त्रारविन्द प्रद्योतन भट्टाचार्य श्री पद्मनाभविरचिते चतुर्थ उच्छ्वासः समाप्तः । ।४२। ।

समान उस दिन अतिपूज्य इन्द्र के साथ अविनाशी देवताओं के समूह से सुशोभित सरयू नदी (भी अतिपवित्र) हो गई।

बघेल वंश के भूषण महराजाधिराज श्री रामचन्द्र देव के पुत्र श्री यशोदा के पुत्र श्री वीरभद्रदेव के चरित्र का श्री बलभद्रमिश्र के पुत्र विजयश्री से उत्पन्न सकल-शास्त्रारविन्दप्रद्योतन-भट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचित चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त हुआ।

❑

पञ्चम उच्छ्वासः

वीर! अयोध्यातः परावृत्तेन मया पूर्वं रघुनाथ-चरणदिदृक्षावशादाकुलदृशा नालोकितं,पश्चादालोकितं भूलोकविशेषमाकर्णय-

श्रीरामचन्द्रनृपतेर्विषये प्रसिद्धं
तत्तीर्थमध्वनि दृगध्वनि मे पपात।
यस्य प्रयाग इति नाम नियौगिकत्वं
मूर्धो निवदयति सम्प्रति यज्ञयूपः ।।१।।

मूर्तिः पुराणपुरुषस्य सहस्रशाख-
वेदोपगीतचरिता दुरितोपहन्त्री
शाखाछल -प्रकटभूरिशिरा पयोदश्
श्यामावटस्य कपटेन चकास्ति यत्र ।।२।।

प्रथमकमठपृष्ठस्थायिनागाधिनाथ-
प्रसृतफणगतेव श्रीपतेरंगयष्टिः।
जलधिमिलितगंगा संगता नीलरोचि-

वीर! अयोध्या से लौटते हुए मैंने रघुनाथ के चरणों को देखने की इच्छा से व्याकुल दृष्टि के कारण पहले न देखे गये, पर बाद में देखे गये कुछ विशेष धरती के स्थानों को सुनो-

रास्ते में श्री रामचन्द्र राजा के विषय में प्रसिद्ध वह तीर्थ मेरी दृष्टि में आया, जिसका ऊँचा यज्ञयूप अर्थात् यज्ञ का खम्भा 'प्रयाग' (विशिष्ट यज्ञों वाला) इस नाम की निश्चितता को सिद्ध करता है। (अर्थात् वहाँ यज्ञ के खम्भों के प्राप्त होने से उसका 'प्रयाग' यह नाम निश्चित सार्थक है।) ।।१।।

जहाँ हजार शाखाओं वाले वेदों के द्वारा गाये गये चरित वाली, पाप का विनाश करने वाली पुराण पुरुष की मूर्ति तथा श्याम वट के बहाने से अनेक विभागों से प्रकट ऊँचे शिखरों वला मेघ विभासित होता है ।।२।।

दिवसकरतनूजा निम्नगा यत्र भाति।।३।।

तत्रैव च गंगायमुनयोस्तटनिषण्णाऽलर्कनगरी नयनपथमगात्।

यस्यां तर्कार्कभासा प्रतिहत-सुगताद्युक्ति-गाढान्धकारे

श्रौते मार्गे चरन्ती विगतभयमसौ ब्रह्मविद्या चकास्ति।

सार्धं वैशेषिकाद्यैरपि च सुमतयो यत्र विध्वस्तमोहा

मीमांसासांख्य-पातञ्जल-फणिफणिनीपाठयन्तोजयन्ति।।४।।

तत्र च कृतस्नानेन दृष्टादिश्रीमाधवचरणारविन्देन मया ततः प्रस्थितेन पथि वर्षागम इवावग्रहनिगृहीतो, दन्तावल इव यन्तृनियन्त्रितः, काकोदर इवादरप्रयुक्तमन्त्रः, सागर इव नियतिनियमितमर्यादोऽगस्त्य-प्रार्थनया निरुद्धाभ्युत्थानतया निरस्तक्रियः, करीव कलभैः क्षुद्रपर्वतैरुपास्यमानः सिन्धुरबन्धुरःविन्धनामा महागिरिर्दृष्टः ।

अनुशीलन- *प्राचीनकाल से मान्य है कि प्रयाग के समीप एक विशाल 'श्याम' नामक वट वृक्ष था। महाकवि कालिदास ने रघुवंश १३/५३ में तथा भवभूति ने उत्तररामचरित के प्रथम अंक में 'कालिन्दीतटेवटः श्यामो नाम' के रूप में इसका उल्लेख किया है ।*

जहाँ आद्य कछुए की पीठ पर अवस्थित नागों के अधिपति शेष के फैले हुए फन के समान विष्णु के अंग तथा समुद्र से मिलने वाली गंगा से मिलने वाली श्याम प्रभा वाली सूर्य पुत्री यमुना नदी प्रकाशित होती है ।।३।।

वहीं पर गंगा यमुना के तट में अवस्थित अलर्क नगरी दृष्टिपथ में आई।

जहाँ पर तर्करूपी सूर्य के प्रकाश से सुगत या बौद्धों के वचनरूपी घने अन्धकार को नष्ट करने वाली, वेदानुकूल मार्ग में चलने वाली भयरहित ब्रह्मविद्या प्रकाशित होती है तथा जहाँ अच्छी बुद्धि वाले विद्धान् लोग मोह का ध्वंस करते हुए वैशेषिक इत्यादि के साथ-साथ मीमांसा, सांख्य, पातंजल शेष की विद्याओं को पढ़ाते हुए विजय को प्राप्त करते है।

वहाँ पर स्नान करने के पश्चात् श्री माधव के चरणों के दर्शन करने के अनन्तर वहाँ से चलने पर मैंने रास्ते में अनावृष्टि द्वारा रोके गये वर्षाकाल के समान, महावत द्वारा नियन्त्रित किये गये हाथी के समान, आदर से प्रयुक्त मन्त्र द्वारा रोके गए सर्प के समान, निश्चित मर्यादा में रहने वाले समुद्र के समान

सानोर्महसानुनिरुद्धभानोर्यत्रोदयास्तं विनिवेदयन्ति।

कोकाय लोकाय च निम्नगासु प्रवृद्धसुप्तानि सरोरुहाणि ।।५।।

अथ त्वदीक्षणोत्कण्ठाकुण्ठमनोवृत्तिना मया ततोऽपि प्रस्थितेनात्यद्भुततया मनोहारी

नीलाम्बराम्बरगृहोत्तमनाथमध्य-

स्तम्भीचकार सुविचार्य परत्र धाता।

दृष्टो गिरिः स पथि बान्धवनामधेयो

विन्ध्यस्य बन्धुरिव पूर्वसमुत्थितस्य।।६।।

तामुन्नतिं कथममुष्य निवेदयामि

लंकाचलस्य पुरतो निजसंश्रयस्य

उत्तुंगयच्छिखररुद्धसमप्रचारो

भानुर्गतिं श्रयति तिर्यगुदीच्यवाच्योः।।७।।

व्योम्नेन्द्रनीलमणिकान्तरुचोपरिष्टाज्-

जुष्टेन मूर्धनि नवीनपयोदभासि।

लंकेश तत्र धरणीस्तनशैलशीले

बालेन्दुरेष नखरांकतया विभाति।।८।।

अगस्त्य की प्रार्थना से उत्थान की क्रिया को रोक देने वाला, जैसे हाथी के छोटे बच्चे बड़े हाथी की उपासना करते हैं, उसी प्रकार छोटे पर्वतों के द्वारा उपासित होने वाला, हाथियों से मनोहर विन्ध्य नामक महान् पर्वत देखा गया।

जहाँ पर लोगों की प्रसन्नता के लिए नदियों में छाए हुए बड़े-बड़े कमल, पर्वत की अत्यन्त ऊँची चोटियों के द्वारा रोके गये सूर्य के उदय और अस्त की सूचना प्रदान करते हैं।।५।।

अब आपके दर्शन की उत्कण्ठा से कुण्ठित मनोवृत्ति वाले मेरे द्वारा वहाँ से भी चल देने पर अत्यन्त अद्भुत होने से मनोहारी-

बलराम के समान वस्त्रों वाले (ब्रह्माण्डरूपी) सुन्दर गृह के स्वामी विधाता ने खूब विचार करके इस मध्य भाग को अवस्थित किया। रास्ते में यहाँ पर पहले

तुंगस्य तुंगपरिणाहभृतो धरित्री-

वक्षोरुहस्य कटकेन गिरेरमुष्य।

तारागणो ननु च पार्श्वयुगावलम्बी

मुक्ताफलप्रकरहारधियं धिनोति।।६।।

कच्चित् सेतुविधौ वलीमुखचलैरानीयमाने गिरि-

र्मुक्तो शक्तिवशेन राक्षसपतेः प्रायः प्रमाणाधिकः।

उद्वेलत्कलिकालवृद्धयवनाकूपारमज्जन्मनि

स्वर्वालम्बतया स बान्धवतया ख्यातो जगत्यामभूत्।।१०।।

कीलीकृत्य दिगन्तशैलमभितो मध्ये भुवो बान्धव-

मध्यस्तम्भतया निधाय विततं वासोमयं मन्दिरम्।

उत्थाप्याम्बुजयो निरम्बरमिषात् कीर्तिप्रतापादिह

श्री रामस्य स दम्पती गृहपतिं कृत्वा भवन्निर्वृतः।।११।।

दृष्टो मया वीर! सकौतुकेन नादाभिधस्तत्र महातडागः।

उठने वाले विन्ध्यपर्वत के बन्धु के समान 'बान्धव' नामक गिरि या पर्वत देखा गया।।६।।

आपके निज आवासभूत लंका पर्वत के सामने मैं उसकी ऊँचाई को किस प्रकार बताऊँ। जिसके अत्यन्त ऊँचे शिखर से अवरुद्ध गति वाला सूर्य अपनी गति को उत्तर या दक्षिण की ओर टेढ़ा बना लेता है।।७।।

हे लंका के स्वामी! इन्द्रनीलमणि की कान्ति वाले, प्रिंय लगने वाले आसमान के साथ-साथ ऊँचाई पर नवीन मेघ की आभा वाले, धरती के स्तन के समान व्यवहार करने वाले इस पर्वत पर बालचन्द्रमा अपनी गोद में नाखून वाला पंजा रखे हुए प्रतीत होता है।।८।। (क्योंकि ऊँचाई से क्षितिज का चन्द्रमा एकदम लाल दिखाई देता है।)

अत्यन्त विस्तृत लम्बाई वाली धरती के स्तनों के समान अत्यन्त ऊँचे पर्वत की इस चोटी के द्वारा सामने लटके हुए तारागण मोती के समूह के हार की बुद्धि को उत्पन्न करते हैं।।९।।

एक बार पुल बनाते समय वानरों के द्वारा (पत्थर) लाये जाने पर राक्षसपति की शक्ति के द्वारा प्रायः प्रमाण से अधिक बड़ा पहाड़ फेंक दिया गया। चलते

यदीक्षणादच्छदृशः कियन्तो वारां निधिं सागरमामनन्ति ।।१२।।

वृक्षास्तदारामगताः फलादौ दृष्टाश्च कल्पद्रुमबद्धकक्षाः ।

दाने तु रामेण विधीयमाने लज्जावशात् सम्प्रति तेऽपि कुण्ठाः ।।१३।।

जलोचिता वा विपिनोचिता वा ये पक्षिणस्तत्र निरीक्षितास्तु ।

प्रायेण तन्निर्मितये विधाता सृष्ट्यन्तरात् कौशलमाततान ।।१४।।

निमज्य यस्मिन् प्रतिबिम्बदम्भो निदाघदुःखानि जहाति भानुः ।

दृष्टो विशिष्टो ज्वलयेत् स तस्मिन्नन्योऽपि माणिक्यकृतस्तडागः ।।१५।।

तटेषु तस्य प्रतिबद्धमूला द्रुमावली नूतनपल्लवेन ।

प्रियाञ्चलेनेव निदाघकालमार्गश्रमं भानुमतोऽपहन्ति ।।१६।।

एतस्य सोपानपरम्परासु तनोति सिक्तस्सुचलैस्तरङ्गैः ।

हुए कलिकाल में बड़े बड़े यवनों के समूह के उद्भव होने पर यह स्वर्ग जैसा आलम्बन बना, अतः यह विश्व में 'बान्धव' इस रूप में प्रसिद्ध हो गया ।।१०।।

दिशाओं के अन्त में पूर्वाचल तथा अस्ताचल के सामने धरती के बीच में मध्य स्तम्भ के रूप में कील बनाकर विस्तृत बान्धव दुर्ग को रहने योग्य मन्दिर के रूप में स्थापित किया। पुनः (श्रीराम) कीर्ति प्रताप से अपने चरण कमलों में उठाकर वहां रामचन्द्र बघेल को दम्पती गृहपति बनाकर निश्चिन्त हो गये ।।११।।

वीर! मैंने वहाँ आश्चर्य से नाद नामक विशाल तालाब देखा जिसे देखकर कितने ही स्वच्छ दृष्टि वाले लोग उसे जल का भण्डार सागर बताते हैं ।।१२।।

वहाँ के बगीचों में कल्पद्रुम जैसी बँधी हुई पंक्ति वाले फलों से परिपूर्ण वृक्ष देखे गये। पर रामचन्द्र (बघेल) के दान करने पर तो वे भी लज्जावश कुण्ठित हो जाते थे। (क्योंकि रामचन्द्र उन वृक्षों से भी अधिक दान करते थे!) ।।१३।।

वहाँ पर जल में रहने वाले या जंगल में रहने वाले जो पक्षी मैंने देखे, उनके निर्माण के लिए विधाता ने किसी दूसरी सृष्टि से कुशलता प्राप्त की थी ।।१४।।

छायासु तीरस्थमहाद्रुमाणां निदाघभीतः शिशिरो निवासम् ।।१७।।

गृहाणि तत्राच्छसुधोज्वलानि वृष्टानि कैलासशिलाकृतीनि।

श्रीरामचन्द्रेशविरोधभाजां बन्दीकृतानी वयशांसि राज्ञाम् ।।१८।।

अपि च-

तस्य गिरेरधस्तादाराद्दवदहनमुपलभ्य केनचित् कविनेदं पठितं मयाऽऽकर्णितम्-

परिक्षीणाश्छिन्ना क्वचन धृतकम्पा लवतनुः

कुर्वीणाकाकोलीतरुचटचटानिःस्वनमिषात्।

भवद्वन्द्वी भूताप्रतिसरणिधौरेयमहतां

प्रतापश्रीरेषा दवदहन्मेषानिवसति ।।१९।।

हट्टासु चारुघटितासु विचित्रशस्तु

जातार्चितस्थितिविधानमनोहरासु।

विक्रेयवस्तुषु चरेषु तथा चरेषु

सूर्य उस तालाब के जल में प्रतिबिम्बित होकर तथा डूबकर अपनी गर्मी के दुखों को भूल जाता था। वहाँ पर ध्यान से देखने पर कोई मणि से निर्मित दूसरा तालाब प्रतीत होता था।।१५।।

उस (तालाब) के तटों में बड़ी जड़ों वाले पेड़ अपने नये-नये पत्तों से गर्मी के समय में चमकीले मार्ग में (राहगीरों की) थकान को प्रिया (पत्नी)के आँचल के समान दूर कर देते थे।।१६।।

इस तालाब की सीढ़ियों पर तट पर अवस्थित विशाल वृक्षों की छाया में चंचल तरंगों द्वारा सींचा गया (मानों) गर्मी से डरा हुआ शिशिर निवास करता था।।१७।।

वहाँ पर (मानों) कैलास पर्वत के पत्थरों से निर्मित, धुले हुए स्वच्छ अमृत के समान उज्ज्वल घर थे। जैसे वे रामचन्द्र राजा से विरोध रखने वालों के बन्दी बनाए गये यश हों ।।१८।।

और भी-

उस पर्वत के नीचे पास ही वनाग्नि को देखकर किसी कवि को यह

दोषो वणिङ्मनसि तत्र समर्घतैव ।।२०।।

ख्यतिर्यथोच्चैःश्रवसस्तथाभून्न वाजिनां तत्र न वारणानाम्।

ऐरावणस्येव मदीयमन्या तद्वाजमेतेषु बहुत्वमेव।।२१।।

वक्रस्य तत्रत्यविलासिनीनां चन्द्रो भवेदेष तदोपमानम्।

भूपाद्यदा बिम्बतलप्रसून सरोजयुग्म स्मरकार्मुकाढ्यः ।।२२।।

प्रतिभटारभटीतिमिरावलीविघटनस्फुटकान्तिमुखेन्दवः।

अगणिताः कलिताः प्रतिचत्वरं प्रतिगृहं प्रतिवर्त्म भटा मया ।।२३।।

- -

- -

तेषां दृष्टिसरोरुहातिसफलीकर्तुं कृतो वेधसा

दृष्टस्तत्र मया विशिष्टमहिमः श्रीरामचन्द्रो नृपः ।।२४।।

पढ़ते हुए मैंने सुना-

परिक्षीण तथा टूटी हुई खराब वीणा कें समान या कुछ चंचल दुर्बल शरीर वाली पहाड़ी काली कौई के समान वृक्षों के चटचटा शब्द के बहाने विरोधी विशाल सेनाओं के द्वन्द्व की दशा में (राजा की) प्रताप श्री ही वनाग्नि के वेश में निवास कर रही है।।१६।।

विचित्र रूप से सुन्दर सजाये गये बाजार में संग्रह करके रखी गई वस्तुओं से मनोहर बेची जाने वाली वस्तुओं में दोष केवल बनिये के मन में रहने वाली बहु मूल्यता ही है ।२०।।

वहाँ पर उच्चैःश्रवा अर्थात् इन्द्र के घोड़े की जैसी ख्याति थी वैसी सामान्य घोड़े की नहीं। इसी प्रकार से ऐ रावण अर्थात् इन्द्र के हाथी के समान सामान्य हाथी की ख्याति नहीं थी। क्योंकि वहाँ इनका (इन्द्र के हाथी, घोड़े का) ही बहुत्व था।।२१।।

वहाँ की बाँकी विलासिनी स्त्रियों का चन्द्रमा तब उपमान बनता था जब राजा (चन्द्र) बिम्ब के नीचे उत्पन्न होने वाले कमल के साथ कामदेव के धनुष वाला बनता था।।२२।।

शत्रु सैनिकों के झूठे विश्वास रूपी अन्धकार को नष्ट करने में स्पष्ट कान्ति

इन्दोरन्तरिदं नवीमजलदच्छायं यदालक्ष्यते।
वक्तुं तत्र मतानि पूर्वविदुषामस्मादृशां न ग्रहः।
अस्माकं मतमेतदेतदुदयत्कीर्तिप्रभानिर्झर-
प्रादुर्भूत-पराभवोद्भवमिह श्यामत्वमालक्ष्यते।।२५।।
समित्संगसमृद्धस्य तेजसा वह्निकल्पना।
श्रीरामचन्द्रनृपतेर्भवतीति किमद्भुतम्।२६।।
कान्त्याऽखण्डभुवोऽखिलाम्बरतरुव्याप्त्यान्तरिक्षच्छलात्।
स्थित्या वा यशसोऽस्य संस्तवकथाः कुर्यात् कथं मादृशः।
यस्मादस्य गतांक शारदशशिप्रच्छायपद्मत्विषो
लंकेश क्षत दोष कोशपदवी ब्रह्माण्डमारोहति।।२७।।

वाले, चन्द्र सदृश (दीप्तियुक्त) मुख वाले, अगणित सैनिकों को प्रत्येक चौराहे, प्रत्येक गृह तथा प्रत्येक रास्ते में मैंने देखा।।२३।।

----उनके नयनकमलों को सफल बनाने के लिए ब्रह्मा द्वारा निर्मित विशिष्ट महिमा वाले श्री रामचन्द्र राजा को मैंने देखा।।२४।।

चन्द्रमा के अन्दर जो नवीन मेघ की छाया दिखाई पड़ती है, उस पर पुराने विद्वानों के बहुत से मत हैं। पर हम जैसे लोगों का उन पर विश्वास नहीं है। हमारा तो मत यह है कि (रामचन्द्र राजा की) उदय होती हुई कीर्ति की प्रभा के प्रभाव से उत्पन्न जो (शत्रुओं का) पराजय है, वही यहाँ कालिमा के रूप में दीख पड़ता है।।२५।।

समिध् अर्थात् लकड़ियों के संसर्ग से समृद्ध तेज से अग्नि (के निर्माण) की कल्पना होती है। यह रामचन्द्र राजा के सन्दर्भ में भी होता है, इसमें क्या आश्चर्य है। (क्योंकि उनके प्रसंग में भी समित् अर्थात् युद्ध के संसर्ग से बढ़े हुए तेज के द्वारा क्रोधाग्नि के निर्माण की परिकल्पना होती है। यहाँ श्लेष से पहले समिध् का अर्थ लकड़ी तथा दूसरे समित् का युद्ध अर्थ करके दो प्रकार के सन्दर्भों की समानता बताई गई है।)।।२६।।

अन्तरिक्ष के बहाने से सम्पूर्ण आकाश में व्याप्ति होने से तथा सम्पूर्ण धरती की कान्ति के रूप में इसके यश के ही अवस्थित होने से मेरे जैसा

कान्तिप्रक्षालिताशं हरशिखरिमिलज्जाह्नवीपूरगौरं

पीयूषामन्दधारारुचिरुचिरतरप्रेयसीहासभासम् ।

हित्वा तत्कीर्तिसोमं मथनविधिचलद्दुग्धसिन्धुप्रकाशम्

ब्रह्माण्डाखण्डभाण्डोदरविपुलदरीपूरणे कःसमर्थः।।२८।।

स्वस्ति श्रीमद् बघेलकुलावतंस महाराज श्रीरामचन्द्र देवात्मज श्री यशोदानन्दन युवराज श्री वीरभद्रदेवचरिते मिश्र श्री बलभद्रात्मज विजयश्री गर्भसम्भव सकल शास्त्रारविन्द प्रद्योतन भट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचिते पञ्चम उच्छ्वासः समाप्तः।

व्यक्ति किस प्रकार इसकी स्तुति की पूरी कहानी कह पावे। क्योंकि हे लंकेश! अंकविहीन शरत्कालीन चन्द्रमा की छाया वाले कमलों की प्रभा वाली (राजा रामचन्द्र की) दोष विहीन कोश की प्रशंसा समूचे ब्रह्माण्ड में व्याप रही है ।।२७।।

अपनी कान्ति से सम्पूर्ण दिशाओं को धोने वाले, शिव के पर्वत से मिली हुई गंगा के प्रवाह के सदृश गौर वर्ण वाले, अमृत की विपुल धारा से रूचिपूर्वक शोभित प्रेयसियों के साथ हासपूर्ण दीप्ति वाले, कीर्ति में चन्द्र सदृश, मथन विधि से प्रकट चंचल दुग्ध के सिन्धु के प्रकाश वाले (उन रामचन्द्र बघेल को) छोड़कर अखण्ड ब्रह्माण्ड की विपुल उदर दरी को भरने में कौन समर्थ है।२८।।

बघेल वंश के भूषण महाराजाधिराज श्री रामचन्द्रदेव के पुत्र श्री यशोदा के पुत्र श्री वीरभद्रदेव के चरित का श्री बलभद्र मिश्र के पुत्र विजयश्री से उत्पन्न सकल शास्त्रारविन्द प्रद्योतनभट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचित पञ्चम उच्छ्वास समाप्त हुआ ।।

❑

षष्ठ उच्छ्वासः

अवरुह्य ततो मया सुरेश त्वरया त्वत्पदपद्मवीक्षणाय।
चलितेन विलोचनातिथीरचितो वर्त्मनि सैन्यसागरः।।१।।

आरभ्यारम्भमम्भोधरनिवहनिभैरात्तमस्तान्तराले-
रन्तः कान्तं महद्भिः क्रमललितपदन्यासिभिर्वारणेन्द्रैः।
दृष्ट्वा सैन्यं तदुर्वीवलयविपुलतादर्पसम्भारहारि
प्रोद्बोधःप्रागभून्मे मुहुरिह जलधे राघवाबद्धसेतोः।।२।।

तत्रच्छत्रमिषप्रतापभयभृद्भानूपहारीभवत्-
स्वच्छाम्भोरुहमण्डलप्रकटितक्षोणीतलप्राभवः।
आरूढः पवमानमानतिमिरस्फूर्जत्सुधादीधितिं
वाजीन्द्रं नयनातिथिर्विरचितःश्रीवीरभद्रो युवा।।३।।

यस्य चारुयशःस्तोमं वीक्ष्य सोमेऽनुशोचता।

हे सुरेश! आपके चरण कमलों के दर्शन के लिए उस (विन्ध्य पर्वत) से शीघ्रता से उतरकर रास्ते में चलते हुए मुझे सेना का समुद्र दृष्टिगोचर हुआ।।१।।

मेघ के समूह के सदृश, अवकाशविहीन, विशाल, सुन्दर क्रम से पैरों को उठाने वाले उत्तम हाथियों से प्रारम्भ करके धरती की विशालता के दर्प को हरण करने वाले सुन्दर सैन्य को देखकर पहले मुझे लगा कि यह राघव के द्वारा समुद्र पर पुल बाँधने वाला (सैन्य) है।।२।।

वहाँ पर अन्धकार को हटाकर सुधा की दीप्ति को फैलाने वाले छाते के बहाने प्रताप से डरे हुए राजाओं के द्वारा सूर्य (के प्रतीक) के उपहार के साथ-साथ स्वच्छ कमल से विरचित प्रभामण्डल से प्रकटित धरती पर प्रभाव वाले, विशाल घोड़े पर आरूढ होने वाले वीरभद्र मेरे द्वारा दृष्टिगोचर किये गये। (अर्थात् उनके छत्र पर सूर्य का प्रतीक तथा कमल-विरचित प्रभामण्डल वर्तमान था)।।३।।

विधिना विहिता श्वासा यैरेष मलिनः कृतः । ।४। ।

लंकेश! शंके शरदिन्दुबिम्ब प्रभासुधाभासुरकीर्तिलक्ष्मीः ।
प्रतापवह्नौ स निजो परेषां साम्राज्यमाज्यं हविराजुहोति । ।५। ।

प्रतापरुद्रोदयभानुदेवौ दृष्टौ तथा पार्श्वगतावमुष्य ।
यथोद्यमे सैन्धवनिग्रहस्य किरीटिनः सात्यकिभीमसेनौ । ।६। ।

मन्यन्ते न तथा निधीन्न गणयत्युच्चैश्च चिन्तामणीन्
कीर्तीर्नाकलयन्ति दैवततरोः कर्णस्य भोजस्य च ।
संग्रामांगणसीम्नि भीमवपुषो मुख्यस्य तेजोजुषां
श्रुत्वा दानकथाः प्रतापनृपतेर्लोकाः समुद्रावधि । ।७। ।

प्रक्षालितद्विषच्छंकापंकापूर्णमनोरथाः ।
तद्दानवारिणा दानवारिणेव बुधाःकृताः। ।८। ।

जिसके सुन्दर यशः समूह को देखकर विधि ने शोक करते हुए चन्द्रमा पर अपनी साँसे फेंकी, उनसे ही यह (चन्द्रमा) मलिन किया गया है । ।४। ।

हे लंकेश! मुझे लगता है कि शरत्कालीन चन्द्रबिम्ब की प्रभारूपी सुधा से प्रकाशित कीर्ति वाली लक्ष्मी उसकी प्रताप रूपी अग्नि में अन्यों के साम्राज्य रूपी घी की आहुति प्रदान कर रही है । ।५। ।

इसके बगल में प्रतापरुद्र तथा उदयभानुदेव वैसे ही देखे गये जैसे घोड़े को पकड़ने के प्रयत्न में किरीटी अर्जुन के साथ सात्यकि तथा भीमसेन देखे गये थे। ।६। ।

इन प्रतापी नरेश की दान की कहानियाँ सुनकर समुद्र तक रहने वाले लोग (कुबेर के ९) खजानों को नहीं मानते, चिन्तामणि रत्न की गिनती नहीं करते, देवताओं में कल्पवृक्ष सदृश कर्ण तथा भोज की कीर्ति को कुछ नहीं समझते, संग्रामभूमि में तेज से प्रीति करने वालों में मुख्य भीम के शरीर को भी (कुछ नहीं मानते)। ।७। ।

शत्रु राजाओं के शंका रूपी पंक के द्वारा अपूर्ण मनोरथ वाले विद्वान् लोग हाथी के मदजल के समान, उसके द्वारा दान हेतु (आचमन के) जल से धोए गए। ।८। ।

प्रादुर्भवन्नवपराभवजातभूरि-

लज्जाभरादिव नतीकृतवक्त्रचन्द्राः।

जाने रणाय विषमाय धनुर्धुनानाः

प्राप्ता विहाय समरं स्वपुरं प्रतीयाः।।९।।

रुचिरमुदयमन्येचन्द्रताराग्रहाद्या

यदपि जगति सन्ति ख्यापयन्तस्तथापि।

वयमिह सविचारं शीलयन्तस्त्रिलोक्या-

मुदयमुदयभानोर्नान्यतस्तर्कयामः।१०।।

परगुरुलघुतापरीक्षणे यः क्षम इह भाति तुलेव सर्वलोके।

नयनपथमगात्तुलातुलश्रीरयमथवा रसवीरभद्रमन्त्री।।११।।

रुद्रन्ति शंकरगिरावहिमन्दिरेषु शेषन्ति पंकजवनन्ति सरोवरेषु।

तत्कीर्तयस्त्रिभुवनाक्रमणे क्रमेण चक्रायुधन्ति सुरदन्तिसमानभासः।।१२।।

मैं समझता हूँ कि विषम युद्धभूमि में धनुष को चलाने वाले (शत्रुगण) अपनी नई पराजय से उत्पन्न अतिशय लज्जा से ही मानों अपने मुखचन्द्र को झुकाए हुए युद्ध को छोड़कर अपने नगर की ओर चले गए- ऐसा तुम भी समझो।।९।।

चन्द्र, तारा, ग्रह इत्यादि जो अपना सुन्दर उदय बनाते हुए इस जगत् में प्रसिद्ध हैं- उनके विषय में हम भली प्रकार विचार करते हुए कहते हैं कि यह उदयभानु के उदय के अलावा अन्य कुछ नहीं है।।१०।।

जो सभी लोकों में तुला या तराजू के समान दूसरों की गुरुता या लघुता के परीक्षण में सक्षम हैं, पर जो स्वयं तुला द्वारा न तोली जा सकने वाली श्री वाले हैं- इस प्रकार के वीरभद्र के मन्त्री भी दृष्टिगोचर हुए।।११।।

इस (वीरभद्र) की देवताओं के हाथियों के सदृश प्रभा वाली कीर्तियाँ तीनों लोकों पर आक्रमण के समय चक्रायुध के समान, शंकर गिरि में रुद्र के समान, अहि मन्दिर में शेष के समान, सरोवर या तालाबों में कमलों के वन के समान आचरण करती हैं।।१२।।

आरूढो रुचिरस्फुटोपकरणं ताम्बूलपादाय यो

चेगारं भजितप्रभंजनजवं तुगं तुरंगं नवम् ।

संग्रामोचितवेष्यपेशलरुचिः प्रख्यातदोर्विक्रमः

कर्पूरः समयाकृतो नयनयोरप्यन्यरुद्धो रयः।।१३।।

रहस्यविरसावस्य तवैवाहं विभीषण

आसीद् दृष्टिसुखस्रष्टा यशोधवलदिक्तटः।।१४।।

विभीषणः- कथय तत्र सैन्यार्णवे वर्तमानान् भटान्। इयमपि मन्दोदरी सम्प्रति तदाकर्णन एव दत्तकर्णा।

प्रसादप्रापकः- वीर! आकलय निखिलधरावलयपर्याप्ते सेनासमुद्रे संक्षेपतोऽभिधीयमानं किञ्चित्।

रचितद्विषदवहेला जलनिधिवेलावधि प्रथिताः।

संगरभुवि कृतखेला वीरबघेला मया दृष्टाः।।१५।।

जो सुन्दर तथा स्पष्ट उपकरणों वाले, पान का डिब्बा लेकर बैठने वाले को तथा तीव्र वेग को धारण करने वाले नए विशाल घोड़े पर सवार था ऐसा संग्राम के लिये उचित सुन्दर वेश वाला, कोमल कान्ति वाला, अपने बाहु के पराक्रम के लिये प्रख्यात, कर्पूर के समान (गौर), अन्य के वेग को रोक लेने वाला (वीरभद्र) ठीक समय पर दृष्टिगोचर हुआ।।१३।।

हे विभीषण! मैं तुम रहस्य सुनने वाले के (सामने कहता हूँ कि) वह नयनों के लिये सुख का सृजन करने वाला तथा यश से धवल दिशाओं वाला था।।१४।।

विभीषण-- तो फिर वहाँ सैन्य समुद्र में वर्तमान सैनिकों का वर्णन करो। इस समय यह मन्दोदरी भी उन्हें सुनने के लिये कान लगाए हुए है।

प्रसादप्रापक-- वीर! सम्पूर्ण मेखला रूपी धरती (के अन्त) तक (फैलने में) पर्याप्त सेना-समुद्र के विषय में संक्षेप से कुछ कहा गया वचन सुनो--

शत्रुओं के विनाश की रचना करने वाले, युद्धभूमि में क्रीडा करने वाले वीर बघेल (सैनिक) समुद्र की सीमा पर्यन्त फैले हुए मैंने देखे।।१५।।

मैने स्पष्ट ही भुजाओं के परिघ के विस्फोट के द्वारा डर से विलुप्त होते

कर्षन्तः कार्मुकज्या कतिचिदसिलताभ्यासमानेदवन्तः
केचिच्छक्तिं क्षिपन्तः कतिवरपरशुप्रासपाश स्पृशोऽन्ये ।
सैन्ये तत्रापरे तु स्फुटभुजपरिघास्फोटसृष्टारिवर्गास-
त्रासादृष्टाःप्रहृष्टाःप्रतिभटनिहता तोमरा वीरवीराः । ।१६ । ।
तरवारितीव्रधाराचपल-पताकाचलद्वीचि ।
सेना सागरमेनं ललितारादूवाहिनी मिलिता । ।१७ । ।
दृष्टाश्चवृद्धावधिवैरिघातप्रसिद्धरौद्राहितभीमवेषाः ।
दुःसाधसंग्रामविधाविधाननिधानचौहाणचमूपवीराः । ।१८ । ।
भ्रात्राऽसौ हेमनाम्ना सह कठरियासेनयोरुग्रधन्वा
दौर्दर्प्योत्सर्पितेजोदवदहनशिखादग्धवैरिप्रभावः ।

हुए शत्रुगण, मारे जाते हुए शत्रु सैनिक तथा कहीं पर धनुष की डोरी खींचते हुए, कहीं तलवाररूपी लता का अभ्यास करते हुए, कहीं 'शक्ति' नामक अस्त्र को फेंकते हुए, कोई सुन्दर परशु को फेंकने वाले तथा कोई पाश को छूने (हाथ में लेने)वाले अति प्रसन्न तोमर वीर सेना में देखे हैं । ।१६ । ।

सामने ही सुन्दर वहन करने वाली नदी अथवा सेना तलवार की तीव्र धारा वाले तथा चंचल पताकाओं से चंचल तरंगों वाले इस समुद्र से मिल गई । ।१७ । ।

अनुशीलन-- *वाहिनी अर्थात् नदी समुद्र से मिला करती है। साथ ही सैन्य का वहन करने से वाहिनी का अर्थ सेना भी होता है। अतः यहाँ सेनारूपी नदी तलवार की तीव्र धारा वाले विशाल सैन्यसमूहरूपी समुद्र से मिल गई-यह आशय है ।।१७।।*

वृद्ध पर्यन्त शत्रुओं के विनाश में प्रसिद्ध रौद्र गुणों से भयंकर वंश को धारण करने वाले, दुःसाध्य संग्राम के विधि-विधान के निधान-'चौहान' सेना के वीर भी देखे गए । ।१८ । ।

'कठरिया' सेना के उग्र धनुष वाले, भीषण दर्प से अपने तेज को प्रसारित करने वाले, वनाग्नि की लपट से शत्रुओं को दग्ध करने के प्रभाव वाले, घोड़ों के समूह के कठोर खुरपुटों वाले, डण्डे से मारने तथा उसके फेंकने के द्वारा चंचल

आयातो वाजिराजिप्रखरखुरपुटो दण्डनिर्घातघात-

स्फूर्जद्भूधूलिधाराप्रतिहतदिनकृद्वैभवो रत्नसेनः। ।१६। ।

यादवेन्द्रमिव यादवा भटा वीरभद्रमरिनिग्रहोद्यतम्।

आययुर्जवजितप्रभञ्जनान् वाजिनः समधिरुह्य यादवाः । ।२०। ।

अटत्कटकघोटकोद्भटखुराग्रटंकत्त्रुटत्-

प्रभूतधरणीरजोनिच यरुद्ध भास्वत्कराः।

समापतुररिव्रजद्विरदयूथकुम्भस्थली

कपाटपटुपाटन प्रहितसायकाः खीचराः। ।२१। ।

समरव्यवसायशालिनो वयसा शीलितशास्त्रसंचयाः।

पवन त्वरिताँस्तुरंगमानधिरुह्य त्वरया समाययुः। ।२२। ।

अद्वैतदोर्दर्पसमर्पितारिपराभव प्राप्तयशःप्रकाराः।

मन्दीकृताऱातिचमूप्रचाराःसमाययुस्तं तरसा पंवाराः। ।२३। ।

धरती की धूल से सूर्य के वैभव को रोक देने वाले ये रत्नसेन अपने हेम नामक भाई के साथ आए । ।१६। ।

यादवेन्द्र श्रीकृष्ण के समान यदुकुल के यादव सैनिक अपने वेग से आँधी को भी जीत लेने वाले घोड़ों पर चढ़कर, शत्रुओं को पकड़ने में तत्पर वीरभद्र के पास उपस्थित हुए । ।२०। ।

दौड़ते हुए सेना के घोड़ों के अतिकठोर खुर के अग्रभाग से टूटती हुई विशाल भूमि की धूलि समूह से सूर्य की किरणों को रोक देने वाले, शत्रु समूह के हाथियों के झुण्ड के मस्तकरूपी कपाट को फाड़ने के लिये छोड़े गए बाणों वाले 'खीचर' भी उपस्थित हुए । ।२१। ।

युद्ध के व्यवसाय में निपुण, अपनी उम्र से शास्त्रों का परिशीलन करने वाले (ये लोग) वायु के समान वेग वाले घोड़ों के द्वारा शीघ्रता से उपस्थित हुए । ।२२। ।

बाहुओं के अद्वितीय दर्प से कराई जाने वाली शत्रुओं की पराजय से यश के अनेकों प्रकार को प्राप्त करने वाले, शत्रुओं की सेना के प्रचार को मन्द

धनुरनुगतमौर्वीमुक्तनाराचधारा निहतविधुरदाराधीतयुद्धप्रकाराः।

तमनुययुरनेकेकीर्तिलब्धाधिपारा अतुलितभुजसारानैकवाराश्ववाराः ।।२४।।

दंष्ट्रादष्टाधरौष्ठा भ्रूकुटि कुटिलताभीमलालाटपट्टाः।

कोदण्डाकृष्टिसक्तोद्भटकरटिकरो दण्डदोर्दण्डचण्डाः।

आयाता वातवेगायतगतिविजितायोगिचित्तप्रचारा-

नश्वानारुह्य वश्यप्रतिभटकटकाधीतयानाःकिकानाः।।२५।।

यद्यपि न वाहिनीभिर्जलधिसमृद्धिः क्वचिद् दृष्टा

आसीत्तथापि वृद्धिर्दिखितप्रतनयाऽस्य सेनायाः ।।२६।।

भुजभुजगनिशातबाणदंष्ट्रा स्फुटपरिदृष्टविमूर्च्छितारिवर्गाः।

कटकजलधिमेनमास्तवेगाःसमधिगताः ड्गूजरा विरेजुः।।२७।।

कर देने वाले 'पंवार' लोग भी शीघ्रता से उनके (वीरभद्र के) पास उपस्थित हुए ।।२३।।

धनुष से लगी हुई डोरी से छोड़े गए बांणों के प्रवाह वाले, युद्ध के अनेक प्रकार को पढ़ने वाले, (सागर के) पार तक प्राप्त कीर्ति वाले, भुजाओं के अतुल बल वाले 'नैकवार' नामक घुड़सवार भी उनके पास उपस्थित हुए ।।२४।।

अपनी दाढ़ से अधरोष्ठ को काट लेने वाले, भृकुटि की कुटिलता के कारण भयंकर मस्तक वाले, धनुष के आकर्षण से खिंचे हुए भयंकर हाथियों की सूंड वाले, दण्डरूपी बाहुदण्ड से भयंकर, वश में आए हुए शत्रु सैनिकों को सिखा देने वाले 'किकान' लोग वायु वेग की लम्बी गति से योगियों के भी चित्त की गति को जीत लेने वाले घोड़ों पर चढ़कर उपस्थित हुए ।।२५।।

यद्यपि वाहिनी अर्थात् नदियों से कभी भी समुद्र की वृद्धि नहीं देखी गई। फिर भी इस 'दिखित' वंश वाली सेना के द्वारा सैन्य समुद्र की वृद्धि हो रही थी ।।२६।। (यहाँ दूसरे चरण में वाहिनी का अर्थ समुद्र करने पर विरोध है। सेना अर्थ करने पर समाधान हैं।)

सर्प के समान भुजाओं से फेंके गए बाण के दंष्ट्रा के समान (नुकीले अग्रभाग से) शत्रु समूह को स्पष्ट ही मूर्च्छित कर देने वाले 'बड़गूजर' लोग वेगशाली होकर इस सैन्य-समुद्र के समक्ष उपस्थित हुए ।।२७।।

निर्गलभुजार्गलप्रहितशक्तिसंचूर्णित

द्विषद्विरदमस्तकस्खलदफल्गुमुक्ताछलात् ।

प्रयातितसमुन्नतस्थितविरोधिकीर्तिव्रता

समापतुरनेकधा सकरवारवीरमुहुः ।।२८।।

समाययुरथापरे तुर गचूर्णितक्ष्मारजो

निरुद्धदिनकृद्वराः प्रतिभटप्रतापद्रुहः ।

नटा विगतसाध्वसाश्वजवेन रंगस्थलीं

भटाप्रकटपौरुषा गहरवारवंशोद्भटाः ।।२९।।

शरच्चन्द्रबिम्बोदयोद्वेल खेलत्तरंगालिदु- - - - विसत्कीर्तिमुग्धाः ।

समाजग्मुरेवं धराचक्रशक्रं सहर्षं ससेनाश्चन्देला जवेन ।।३०।।

पताकाग्रसंघर्षसाशंकभास्वत्तुरंगावलीवेगलुब्धापपारा ।

असौ वाहिनी भूपतेरस्य चान्यैः स्फुटं राजते सूर्यवंशावतंसैः ।।३१।।

अरगला न होकर भी भुजारूपी अरगला से छोड़ी गई जो शक्ति उससे चूर्ण किये गए जो शत्रुओं के हाथियों के मस्तक उसमें से निकलने वाली सारपूर्ण मोती के बहाने उन्नति वाले शत्रुओं के विरोध करने वाली कीर्ति को सर्वत्र पहुँचाने वाले 'सकरवार' वीर बार-बार अनेक प्रकार से उपस्थित हुए ।।२८।।

घोड़ों से चूर्णित धरती की धूल से सूर्य (की किरणों) को रोक लेने वाले, शत्रु सैनिकों के प्रताप से द्रोह करने वाले, अपना पौरुष प्रकट करने वाले गहरवार वंश के उद्भव सैनिक वीरभद्र के पास तथा भय को छोड़ देने वाले घोड़ों की गति से नट लोग रंगस्थली की ओर पहुँचे ।।२९।।

शरत्कालीन चन्द्रबिम्ब के उदय होने पर (समुद्र में) उठती हुई चंचल तरंगों के सदृश आविष्ट कीर्ति वाले 'चन्देला' लोग अपनी सेना के साथ भूमण्डल में इन्द्र के समान हर्षपूर्वक वेगपूर्वक उपस्थित हुए ।।३०।।

(रथ की) पताका के ऊँचे भाग से संघर्ष की आशंका वाले सूर्य के द्वारा घोड़ों के वेग को प्राप्त न कर सकने वाली राजा की यह सेना सूर्यवंश के भूषण अन्य सैनिकों के साथ स्पष्ट ही प्रकाशित होती है ।।३१।।

ध्वजस्तम्भौन्नत्यस्खलितरयभास्वद्रथहय-

प्रयाणप्रारम्भस्फुरदरुणवैयग्रनिपुणाम्।

इमां सेनामस्य प्रबलपरभूभृद्बलभिदः

समाजग्मुर्वेगात्'सुरुकि'वरवीरा विजयिनः।।३२।।

स्फुरद्वैभवाम्भोजरम्याननश्रीर्वलत्कैरवाकारकीर्तिप्रकारा।

शरत्कारकासारशोभेव हंसैरसौ शोभते वाहिनी सोमवंशैः।।३३।।

करकलितकृपाणाः केचिदन्ये धनुर्ज्या-

ध्वनिभिरपहरन्तः सौमनस्यं परेषाम्।

बलभिदमिव देवा निग्रहे दानवानां

तमनुययुरनेके नागवं शप्रशस्ताः।।३४।।

श्री वीरभद्रयूनोऽनूनस्य ज्याग्रहे पार्थात्।

राजति हैहयवंशे सेनेयं हैहयस्येव।।३५।।

(रथों के) ध्वज स्तम्भ की अत्यन्त ऊँचाई के कारण सूर्य के घोड़ों के वेग के स्खलित होने से उनके प्रयाण के प्रारम्भ में नवीन व्याकुलता को उत्पन्न करने में चतुर इस सेना के पास शत्रु राजाओं के बल को नष्ट करने वाले 'सुरुकि' नामक श्रेष्ठ विजयशील वीर वेगपूर्वक उपस्थित हुए।।३२।।

चंचल वैभवपूर्ण कमलों के समान रमणीय मुखों की शोभा वाली, प्रकम्पित श्वेत कुमुद के आकार की कीर्ति वाली, शरत्कालीन सरोवर के सदृश शोभा वाली सेना हंस सदृश सोमवंशी (सैनिकों) के द्वारा सुशोभित होती है।।३३।।

कोई हाथों में तलवार लिये हुए तथा कोई अन्य धनुष की डोरी की आवाज से लोगों के सौमनस्य को छीनते हुए दानवों को पकड़ने में देव सदृश अनेक प्रशस्त नागवंशी (सैनिक) बलभिद् अर्थात् इन्द्र के सदृश उस (वीरभद्र) के पास उपस्थित हुए।।३४।।

धनुष की डोरी पकड़ने में पार्थ या अर्जुन से कम न रहने वाली युवा श्री वीरभद्र की यह सेना हैहय अर्थात् कार्तवीर्य अर्जुन के समान हैहयवंशी सैनिकों से सुशोभित होती है।।३५।।

हरशराहतिजर्जरनिर्जरद्विषदधीतपराभववेदनैः।

प्रतिभटैःप्रकटीकृतपौरुषास्तमुपजग्मुरथो कुशिकान्वयाः।।३६।।

पताकाभिराकाशदेशावकाशं विलुम्पन्नसौ यत्र सेनापयोधिः।

समाजग्मुरत्र प्रभूतप्रशंसा बलेनोल्वण श्वालकी वंशहंसाः।।३७।।

समाजग्मुरोजस्त्रिविख्यात वीर्यास्तुरंगाधिरूढा निरूढा जयेन।

भटा प्रोद्भटा वारणे वैरिभाजां प्रशस्ता पुलस्तिप्रभूता रयेण।।३८।।

वेला इव जलधीनां प्रतिहतपुरवाहिनीमहावेगाः।

मनुजेन्द्रं रखसेला दनुजेन्द्रैनं समाजग्मुः।।३६।।

तदा झञ्झावातप्रचुरगतिवाजिव्रजखर-

स्फुटाघातस्फूर्जत्क्षितितलरजोरुद्धगमनाः।

भरद्वाजा राजद्भुजभुजगवीर्या विजयिनो

दृशोरासन्नूनं ननु मम समासन्नकटकाः।।४०।।

शिव के बाणों के प्रहार से जर्जर शत्रुओं के सदृश पराजय का पाठ पढ़ने वाले शत्रु सैनिकों के प्रति अपने पौरुष को प्रकट करने वाले कुशिक-वंशी (सैनिक) भी उनके पास उपस्थित हुए।।३६।।

पताकाओं से आकाश के अवकाश को विलुप्त कर देने वाला जहाँ सेना का समुद्र था, वहाँ अत्यधिक प्रशंसा-प्राप्त, बल से अतिशयित 'श्वालकी' वंश के हंस भी उपस्थित हुए।।३७।।

अपने बल से तीनों लोकों में विख्यात शक्ति वाले, घोड़ों पर सवार, विजय के लिये प्रतिबद्ध, शत्रुओं को हटाने में उद्भट, अपने वेग में प्रशस्त 'पुलस्ति' वंश के भी अनेक सैनिक उपस्थित हुए।।३८।।

हे दनुज या दैत्यों के अधीश! समुद्र की सीमा के समान नगर की सेनाओं को रोकने के लिये महावेग वाले 'रखसेला' नामक लोग भी इस मनुजश्रेष्ठ (वीरभद्र) के पास उपस्थित हुए।।३६।।

तब आँधी के समान तीव्र गति वाले घोड़ों के समूह के कठोर आघात से उठती हुई धरती तल की धूल से आवागमन को रोक देने वाले, सर्प-सदृश भुजाओं के बल से सुशोभित, विजयशील 'भरद्वाज' लोग सेना के पास मेरी

सुरधुनीजलधौत हिमाचलामलशिला तुलिताच्छयशोंशुकाः।

प्रचुरदोर्बलविश्रुतपौरुषा श्रवधृता कछवाहधनुर्धराः।।४१।।

प्रत्यर्थिप्रयणप्रौढप्रतापपरिशीलिताः।

प्रभुं पृतनया प्राप्ताःपरिहाराःप्रहारिणः।।४२।।

बभूव दोर्दर्पसमापितारिः भूपालकान्तागणगीतकीर्तिः।

सेनासमुद्रेऽस्यबघेलभर्तु स्सिसौंदियासैन्यसरित्समाजः।।४३।।

अतनुधनूंषि धुनाना जवजितझञ्झाप्रभञ्जनैस्तुरगैः।

प्रतिहतविपक्षभाराःकतिचन दृष्टाःप्रतिष्ठानाः।।४४।।

शक्तीरुद्भ्रामयन्तः करतलनिहिता पातमायातमुच्चै-

रश्वानां दर्शयन्तः कतिचन कतिचित् कार्मुका कर्षशक्ताः।

आँखों के समक्ष उपस्थित हुए।।४०।।

देवनदी गंगा के जल से धुली हुई हिमालय पर्वत की पवित्र शिला के समान स्वच्छ यश रूपी वस्त्र वाले, भुजाओं के अत्यधिक बल से प्रसिद्ध पराक्रम वाले, 'कछवाह' नामक धनुर्धारी भी वहाँ (उपस्थित) सुने गए।।४१।।

शत्रुओं के विलोप में प्रौढ़ प्रताप से समन्वित, प्रहार करने वाले परिहार लोग भी अपने सेना के साथ राजा (वीरभद्र) के समक्ष उपस्थित हुए।।४२।।

बघेल नरेश के इस सेना समुद्र में 'सिसौदिया' नामक नदी रूपी सेना का समूह अपने भुजाओं के दर्प से शत्रुओं को नष्ट करने वाला तथा राजाओं की स्त्रियों के द्वारा जिसकी कीर्ति गाई गई है-- इस प्रकार का सिद्ध हुआ।।४३।।

अपने वेग से आँधी, तूफान वाली वायु को जीत लेने वाले घोड़ों पर बैठ कर विशाल धनुषों को कंपाते हुए शत्रुओं के समूह को विनष्ट कर देने वाले कुछ 'प्रतिष्ठान' लोग भी देखे गए।।४४।।

हे दनु-पुत्र दैत्यों के स्वामी! कुछ लोग अपने हाथ पर रखी हुई शक्ति को नचाते हुए, कुछ लोग घोड़ों की ऊँची उछाल तथा उनके गिरने को दिखाते हुए, कुछ धनुषों को खींचते हुए तथा कुछ तलवार की आगे की धार से नष्ट हुए शत्रुओं के हाथियों के समूह के मस्तक से निकलते हुए खून से रंगे हुए

अन्ये [illegible]

रक्ता रक्तांशुकान्ता दनुतनुजपते मुद्गलास्तत्र दृष्टाः ।।४५।।

वीर!एतेचसर्वेश्रीमतोवीरभद्रदेवस्ययात्रोत्सवंनिशम्यसम्भृतसमरसम्भाराः स्वस्वदेशादागत्याश्वादवरुह्यकृतप्रणतिततयोबद्धांजलयःपुरतःस्थिताः। स च श्री राजकुमार इव सशक्तिः, अस्त्यविपक्षः, अत्यन्ततेजःशालिन्यस्मिन्

लाल किरणों के समान सुन्दर 'मुद्गल' लोग भी देखे गए ।।४५।।

वीर! ये सभी श्रीमान् वीरभद्रदेव की (सैन्य) यात्रा के उत्सव को सुनकर युद्ध की पूरी तैयारी के साथ अपने-२ देश से आकर घोड़े से उतर कर प्रणाम करने के लिये हाथ बाँध कर सामने खड़े हो गए। वह श्री राजकुमार के समान शक्ति वाला (श्री वीर भद्रदेव- आगे काफी दूर तक सभी प्रथमान्त शब्द श्री वीरभद्रदेव के विशेषण हैं।), विपक्ष से विहीन, मेरे राजा होते हुए भी इस अत्यन्त तेज वाले सूर्य के साथ मेरे पैरों का संसर्ग उचित नहीं है-- मानों यह सोचकर सूर्य द्वारा समर्पित कमल सदृश छत्र से शोभित होने वाला, कहीं मुझे यह याचकों के अधिकार में न कर दे- मानों इसीलिये सुमेरु पर्वत के सुवर्ण सिंहासन के रूप में डर कर (उसके सामने) अवस्थित होने पर उस पर बैठा हुआ, उसके यश से पराजित होने के कारण (चन्द्रके) वशीभूत होकर उष्णीष या पगड़ी के रूप में बन जाने पर उस चन्द्र-मण्डल से अलंकृत, उसके मुख में चन्द्रमा की भ्रान्ति होने से मध्यनायक नामक माणिक्य के बहाने (वस्तुतः) अनुराग को प्रकट करने वाली मुक्ताकण्ठमाला के रूप में नक्षत्रमाला को ही धारण करने वाला, मानों अधर्म के भय से स्फटिक रूपी शुभ्र कपड़े से बनी हुई अंग को ढकने वाली चादर के द्वारा धर्म समूह को अपने पास ढक लेने वाला, युद्ध की संभावना से उत्साहपूर्वक क्रोध में आये हुए, मानों साक्षात् वीरता और रौद्र की प्रतिमूर्ति-प्रतापरुद्र तथा उदयभानु द्वारा अलंकृत बगल के आसन वाले, हरि के समान कमल सदृश नयनों वाले, शिव के समान अपनी दृष्टि डालने मात्र से अपने विरोधियों के दर्प को पराजित करने वाले, विधि या ब्रह्मा के समान भारती अर्थात् सरस्वती को प्राप्त करके विलास करने वाले, वीरभद्र पक्ष में- भारती=वाणी के आधार पर विलास करने वाले, पाकशासन अर्थात् इन्द्र के समान दुःसह या कठोर शासन वाले, दाशरथि राम के समान 'अंगद' नामक विशेष सेनानी वाले, वीरभद्र पक्ष में- अंगद=बाजूबन्द नामक आभूषण वाले, रौहिणेय अर्थात् बलराम

भूभृत्यपि मयि सुपातूसंसर्गोऽपि नोचित इति विमृश्य भास्वता समर्पितेन

पुण्डरीकेनेवातपत्रेण शोभमानः, कदा मामयमर्थिसात्करिष्यतीति भीत इव मैरौसुवर्णसिंहासनीभूयस्थितेस्थितः, यशःपराभूततयावशीभूतेनोष्णीषीभूय चन्द्रमण्डलेनालंकृतः, वदने सुधाकर-भ्रान्त्या मध्यनायकमाणिक्यव्याजात् प्रकटानुरागया नक्षत्र परम्परयेव मुक्ताकण्ठमालया पुरस्कृतः, अधर्मभयादिव स्फटिकप्रकटपटरचितांगप्रावरणकपटेन स्वीकृतधर्मसन्नाहः, समरसम्भावनासोत्साहरुष्यभ्यांप्रतापरुद्रोदयभानुभ्यांमूर्ताभ्यांवीररौद्राभ्यामिव भूषितपार्श्वासनःहरिरिवपुण्डरीकेक्षणःहरइवदृष्टिप्रपातपराभूतविरोधिदर्पकः, विधिरिव श्रितभारतीविलासः, पाकशासन इव दुःसहशरासनः, दाशरथिरिव सांगदः, रौहिणेयानुज इवानुकूलरुक्मिणीवल्लभः, कृशानुरिव दुर्वृत्तदुस्सहस्पर्शः, भानुरिव भूभृन्मस्तकगृहीतसुपात्संगः, सुधाभानुरिव नयनानन्दः, दुर्योधन इव पुरस्कृत -दुःशासनोऽपि बहुविधार्थिप्रार्थनासावधानः, कर्ण इवाहितख्यातिरपि विशालाक्षबुद्धिमान् असौ बलपुरस्कृतोऽपि वर्मानुगतः, भीम इव धनुर्विद्याविख्यातश्रेष्ठः श्री वीरभद्रदेवः

कृपाचार्येणेवकोदण्डकर्मकौशलशालिदोर्दण्डदर्पोद्धुरेण,सुरपुरोहितेनेव

के अनुज श्रीकृष्ण के समान अनुकूल रुक्मिणी के प्रिय, वीरभद्र पक्ष में-रुक्म अर्थात् स्वर्ण से विभूषित पत्नी के प्रिय, खराब आचरण करने वाले लोगों के लिए अग्नि के समान दुःसह स्पर्श वाले, सूर्य के समान राजाओं के मस्तकों के द्वारा अपने सुन्दर चरणों के स्पर्श को प्राप्त करने वाले, चन्द्रमा के समान नयनों को आनन्द प्रदान करने वाले, दुर्योधन के समान दुःशासन जैसे लोगों को आगे रखने पर भी इस तरह के अनेक प्रकार के याचकों की प्रार्थना से सावधान रहने वाले, कर्ण के समान ख्याति प्राप्त होकर भी विशाल आँखों वाले बुद्धिमान्, पराक्रम से परिपूर्ण होने पर भी कवच से अनुगत, भीम के समान धनुर्विद्या में श्रेष्ठ श्री वीरभद्रदेव ने-

कृपाचार्य के समान धनुष चलाने में कौशल वाले बाहुदण्ड के दर्प से प्रबल- तुलाराम मन्त्री के द्वारा (आगे के सभी तृतीयान्त शब्द तुलाराम मन्त्री के विशेषण हैं।) राजोचित मन्त्रणा में निपुणता-पूर्वक निष्ठा के कारण बड़प्पन वाले, भार्गव परशुराम के समान अपने पक्ष के शत्रुओं की पराजय में समर्थ प्रभूत विद्या वैभव वाले, कल्पवृक्ष के समान अत्यधिक याचक समूह की प्रार्थित वस्तु को

राजोचितमन्त्रनैपुण्यनिष्णातरिष्टेन, भार्गवेणेव स्वपक्षप्रत्यर्थिपराभवक्षम प्रभूतविद्यावैभवेन, कल्पशाखिनेव कल्पितानल्पार्थिसार्थप्रार्थितार्थसन्दर्भेण तुलारामाभिधेनमन्त्रिणा निरूपितक्रमानतिक्रमेणसमानवयोवेषगुणशीलसौन्दर्येण बाल्यमारभ्य सेवाशिल्पकल्पनाकौशलनिरतशीलेनात एवातिशयित प्रेमसुधासिन्धुतरंग सेकान- नुभूतवियद्दाहदहनस्फुलिंगासंगपरितापेन, प्रभूततरविश्वासभारादिवाचपलेन,छत्रमात्रव्यतिरेकेणायंनायमितिजनैर्निरूपितेन, स्वंप्रतिबिम्बेनेव धातृपुत्रेण सकर्पूराभिः सकोमलपूगीफलाभिः सकस्तूरिकासौरभखदिरसाराभिः समुक्ताफलचूर्णाभिर्वीटिकाभिः सर्वनितान् सम्भाव्य स्थितयेऽनुज्ञां ददौ।

विभीषणः-प्रसादप्रापक! कथय प्रतापरुद्रोदयभानुदेवौ। विशेषतः शुश्रूषुरेषा मन्दोदरी।

प्रसादप्रापकः -वीर विभीषण! अस्ति किल मम त्वदीयानुग्रहप्राप्तरघुनन्दन चरणविन्दनिरीक्षणप्रभावादतीतानागतादिसकलवस्तुजाततत्त्वज्ञानं तदा-कर्णयावहितकर्णः।

आसीत् किलास्यश्रीमतोवीरभद्रदेवस्यपितुर्महाराजाधिराजश्रीरामचन्द्रदेवस्य

पूरा करने वाले तुलाराम मन्त्री के द्वारा क्रम से अविपरीत होकर भी समान उम्र, वेश, गुण, स्वभाव, सौन्दर्य के द्वारा बचपन से ही सेवा कार्य में कुशल स्वभाव वाले इसीलिए अत्यन्त प्रेमामृत के समुद्र की तरंगों के कारण वियद्दाह अर्थात् आकाश की अग्नि- बिजली की चिनगारी जैसे कष्टों से असंग या अलग रहने वाले, मानों अत्यधिक विश्वास के भार सें ही अचंचल या गम्भीर रहने वाले, केवल छत्र की भिन्नता से ही-यह मन्त्री है, राजा नहीं है- इस प्रकार मनुष्यों के द्वारा अलग-अलग पहचाने जाने वाले, अपने प्रतिबिम्ब के समान धाता के पुत्र-सनत्कुमार के समान-तुलाराम मन्त्री के द्वारा-

कपूर से मिली हुई कोमल सुपारी से कस्तूरी की सुगन्ध वाले खैर, मुक्ताफल के चूर्ण से युक्त पान से सभी को सम्मानित करके बैठने के लिए अनुमति प्रदान की।

विभीषण– प्रसाद-प्रापक ! अब प्रतापरुद्र तथा उदयभानु के विषय में कहिये। इन्हें विशेष रूप से मन्दोदरी सुनना चाहती है।

प्रसाद-प्रापक- वीर विभीषण ! मुझे तुम्हारे अनुग्रह से प्राप्त रघुनन्दन के

पितुर्वीरभानुदेवस्य सोदरो यामिनीभानुदेवः।

यद्दोर्दण्डाभिघाताद्दलितरिपुबलोत्तुंगमातंगकुम्भ-
स्फूर्जद्रक्तीस्रवन्तीमिलितरणभुवः प्रायशोऽद्यापि भूताः।
उत्खायोत्खाय पांशून् पिशितमिति नखैस्तीक्ष्णधारैः खनित्रै-
रव्यग्रं दीर्घदंष्ट्राप्रकटविकटतानिर्भरं भर्त्सयन्ति ।।४६।।

यस्य च रजन्यामपि परभूभृत्सन्तापकारितया यामिनीभानुरिति प्रधावितया तस्माद् भीष्मदेव्या च महाराजकुमारावेतौ शोभनक्रियाया इव धर्मार्थौ प्रतापरुद्रोदयभानुदेवावाविर्भूतौ। ययोर्यशः क्षीरधावुदये धर्मसुधांशोस्तुंगैस्तरंगैर्वृद्धिस्पृशिडिण्डिरपिण्डैरणुमहद्भेदेनाकाशावकाशप्रकाशिभिश्चन्द्रतारादिव्यवहारः, तयोः प्रतापरुद्रोऽनिरुद्ध इव परतापभूर्भस्मीकृतानेक प्रत्यर्थिव्रातः, पयोधिरिवानुपप्लुतमर्यादः, सुमेरुरिवानेकचिन्तामणिः,

---

चरण कमलों के दर्शन के प्रभाव से अतीत, अनागत सभी वस्तुओं का तत्त्व ज्ञान प्राप्त हो चुका है। अतः कान लगाकर सावधानी से सुनो।

श्रीमान् वीरभद्रदेव के पिता महाराजाधिराज श्री रामचन्द्रदेव के पिता श्री वीरभानुदेव के भाई यामिनीभानुदेव थे।

जिसके बाहुदण्ड के प्रहार से नष्ट हुए शत्रुबल तथा विशाल हाथियों के मस्तक से निकलने वाली खून की नदी से मिली हुई भूमियां प्रायः आजकल भी बन रही हैं। जहां पर (मांसाहारी पशु) अपनी तेज धार वाले खुरपा रूपी (दांतों) से 'यहाँ पर मांस है'- यह सोचकर (ऊपर की) धूल को खोद खोदकर निरन्तर (खा रहे हैं) तथा इस प्रकार अपनी लम्बी दाढ़ से भयंकरता को सूचित करते हुए (उस भूमि को) निन्दनीय बनाते हैं ।।४६।।

रात्रि में भी शत्रु राजाओं को सन्ताप प्रदान करने से यामिनीभानु नाम वाले से भीष्मदेवी में अपनी शोभन क्रिया में साक्षात् धर्म और अर्थ- प्रताप रुद्र तथा उदयभानुदेव नामक राजकुमार उत्पन्न हुए। जिनका यश चन्द्रमा के उदय होने पर समुद्र में वर्तमान विशाल तरंगों से बनने वाले फेन समूह के सदृश, आकाश में प्रकाशित होने वाले चन्द्र, तारे इत्यादि के समान था। इनमें से प्रतापरुद्र अनिरुद्ध के समान शत्रुओं के सन्ताप के जन्मस्थान, अनेक शत्रु समूह को भस्म कर देने वाले, समुद्र के समान मर्यादा का उल्लंघन न करने

बहुकल्पद्रुमासंख्यातकामधेनुवृक्षः सुरधुनीप्रवाह इव कीर्तिव्रातः,

प्रखरतररविकिरणप्रौढ प्रतापः।

उदयभानुस्तु भानुरिव प्रतिदिनमुदयशाली, परतेजसामभिभवसमर्थो, दोषावस्थानविरोधी। तयोः स्पष्टमैत्री च श्री वीरभद्रोदयभानुदेवयोर्नर नारायणयोरिवदृष्टक्रियाफलपर्यवसायिनी। कुमारौचप्रतापरुद्रोदयभानुतनूद्भवौ सूर्यभानुचन्द्रभानौवीरौरौद्रस्थायिभावाविव। वीर! तत्रकटकेदृष्टौयौबालार्काविव वयसा बालौ, नतेजसा। ययोर्धनुर्विद्यानिष्ठामुपलभ्य न धनुर्धरान्तरेषु वैशिष्ट्यं गाहते चेतः।

विभीषणः- कथय पुनस्तस्य कटकस्य वृत्तान्तम्।

प्रसादप्रापकः- वीर! तस्यां रजन्यां तत्रैव दीपोद्योतदलिततमस्ततीनां यामिकजागरणास्तशंकापरलोकेन कटकेन तत्रैव स्थितम्।

निःसान स्वानभीतप्रतिभटतरुणीसंश्रिताशाद्रिसानु

वाले, सुमेरु के समान अनेक चिन्तामणि रत्न वाले, अनेक कल्प-वृक्षों के समान असंख्य कामधेनुरूपी वृक्ष वाले, गंगा के प्रवाह के समान कीर्ति वाले, अपनी अत्यन्त प्रखर किरणों से प्रौढ़ प्रताप वाले थे।

उदयभानु तो सूर्य के समान प्रतिदिन उदयशाली, दूसरों के तेज को दबाने में समर्थ, दोषा अर्थात् रात्रि में अवस्थान के विरोधी, उदयभानु पक्ष में- दोष में अपनी अवस्थिति के विरोधी थे। वहाँ नर और नारायण के समान वीरभद्र तथा उदयभानु की स्पष्ट मैत्री भी स्पष्टतः क्रिया के फल तक बनी रहने वाली होती थी। प्रतापरुद्र तथा उदयभानु से उत्पन्न सूर्यभानु तथा चन्द्रभान नामक वीर कुमार-रौद्र के स्थायिभाव के सदृश थे। वीर! उस सेना में बालरवि के समान देखे गये वे उम्र में बालक थे, तेज में नहीं। जिनकी धनुर्विद्या में निष्ठा को देखकर अन्य धनुर्धारियों की विशिष्टता के प्रति सोचने का मन ही नहीं करता।

विभीषण- तो फिर उस सेना का वृत्तान्त कहिये।

प्रसादप्रापक- वीर! उस रात्रि में वहाँ दीपकों के द्वारा अन्धकार का विनाश कर दिये जाने पर पहरेदारों के जागने से मृत्यु की शंका के दूर हो जाने पर वह सेना वहीं रही।

ध्वनि, प्रतिध्वनि से भयभीत शत्रुओं की तरुणियों के द्वारा पर्वत के शिखरों का सहारा लेने पर, सर्वथा प्रदीप्त सूर्य के समान शत्रु राजाओं के लिये

प्रत्तसद्दीप्तिभानुप्रतिनृपतिवनी स्फूर्जदोजः कृशानुः ।
सेनाभानावनम्रक्षितितलपतनव्याकुलव्यालराज-
स्पष्टावष्टम्भमानाकुलकमठपति प्रातरासीत् प्रयाणम् ।४८।।
सेनाप्रस्थानधावत्सरयहयखुरव्रातघातावदीर्यद्-
भूधूलीराकलय्य प्रतिदिशमुदितात् स्वस्थलीभावसक्ताः ।
भेरीझंकारभंगिप्रभवजवचलद्वीचिसम्भारदम्भा-
दम्भोधिः कम्पतेऽसौ दनुतनुजपते तस्य यात्रोत्सवेषु ।।४६।।

स्वस्ति श्रीमद् बघेलकुलावतंस महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रदेवात्मज श्रीयशोदानन्दन युवराज श्री वीरभद्रदेव चरिते मिश्र श्री बलभद्रात्मज विजयश्री गर्भसम्भव-सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन भट्टाचार्य श्री पद्मानाभविरचिते षष्ठ उच्छ्वासः समाप्तः।

ओज वाली अग्नि के होने पर, सेना रूपी सूर्य में ऊँची नीची जमीन पर गिरने से व्याकुल जो विशाल खूनी हाथी- उसको सहारा देने में व्याकुल जो कछुओं का स्वामी- इन विशेषताओं वाली सेना का प्रयाण प्रातःकाल प्रारम्भ हुआ। ।।४८।।

हे दानवों के स्वामी! उसकी यात्रा के समय सेना के प्रस्थान में दौड़ते हुए वेग पूर्ण घोड़ों के खुर समूह के प्रहार से उत्पन्न होती हुई भूमि की धूल को देखकर प्रत्येक दिशाओं से उत्पन्न होने वाली, भेरी के झंकार के सदृश अत्यन्त प्रभावपूर्ण वेग से लने वाली तरंगों जैसी उद्दामता से समुद्र काँपने लगता है ।।४६।।

बघेल वंश के भूषण महाराजाधिराज श्री रामचन्द्रदेव के पुत्र श्री यशोदा के पुत्र श्री वीरभद्रदेव के चरित का श्री बलभद्र मिश्र के पुत्र विजयश्री से उत्पन्न सकलशास्त्ररविन्द. प्रद्योतन-भट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचित छठा उच्छ्वास समाप्त हुआ।

❑

सप्तम उच्छ्वासः

वीर! प्रातर्लंकापुराभिमुखं तस्यानवच्छिन्न – पूर्वापरावधेः सेनामहोदधेः प्रस्थानमवलोक्य त्रासाकुलतया रघुनाथकृतस्य तव राज्याभिषेकस्य महिमानमनाकलय्य त्वां सावधानं कर्तुमहं ततः प्रस्थितः। तत्रान्तरा दृष्टस्य रत्नपुरस्य वृत्तान्तं तावदाकर्णय। बहिरवस्थितेन मया वाजिनां हेषाद्विरदानां बृंहितान्याकर्ण्य राज्ञो धैर्यमुपवर्णितम्, चिन्तितं चैतत्। एतज्जये व्यासक्तस्यैतदुत्तरदेशगमनं विलम्बेन भविष्यति तस्य महाराज-कुमारस्य। तावदहं लंकाधिनाथं सावधानं विधास्यामि। ततस्तावता निरस्तकियच्छंकः सोत्साहं पुराभ्यन्तरं प्रविष्टः। तत्र चार्धबद्धान् वाजिनो द्विरदांश्चोपलभ्येत्थं विचारितम्। नूनमत्रावस्थितानां राजप्रभृतीनामेतावदपि न धैर्यं येनाश्वादीन् परिमुच्यमानान् पलायनम्।ततो राजवेश्मावलोकयितुं तत्पथेन

वीर! प्रातःकाल लंका नगर की ओर पूर्व से लेकर पश्चिम तक निरन्तर विस्तार वाले सेना रूपी समुद्र के प्रस्थान को देखकर डर से व्याकुल होकर, रघुनाथ के द्वारा किये गये आपके राज्याभिषेक की महिमा पर ध्यान न देते हुए आपको सावधान करने के लिए मैं वहां से चल पड़ा। तब बीच में देखे गये रत्नपुर के वृत्तान्त को पहले सुनो। मैंने बाहर खड़े होकर घोड़ों की हिनहिनाहट तथा हाथियों की चिंघाड़ को सुनकर राजा के धैर्य के विषय में सोचा तथा यह विचार किया कि इस महाराज (रामचन्द्र बघेल) के कुमार (वीरभद्र) के इस (रत्नपुर) की विजय में लग जाने पर अब यहां से उत्तर देश की ओर जाना विलंब से हो पावेगा तब तक मैं लंका के पालक को सावधान कर दूंगा। उस बीच शंका के दूर कर दिये जाने पर मैं उत्साहपूर्वक उस नगर (रत्नपुर) के अन्दर चला गया। वहां पर आधे बंधे हुए घोड़ों तथा हाथियों को देखकर मैंने यह सोचा-यहां रहने वाले राजा इत्यादि को इतनी भी समझ नहीं कि इस तरह छोड़ दिये गये घोड़ों का भागना हो सकता है। उसके बाद राजगृहों को देखने के लिए उसी रास्ते से आगे चल पड़ा। वहां पर अत्यन्त तीव्र पाणिकमलों के द्वारा अन्तःपुर की स्त्रियों के स्तन प्रान्त को दबाये जाने के कारण हार से टूटकर चारों ओर गिरे हुए कश्मीर देश के केसर के समान अरुण मोतियों से सुशोभित जो घर के अन्दर के भाग, जिसमें सिंह का निवास समझकर हाथियों ने विनष्ट नहीं किया तथा हिरनों के

प्रस्थितम्। दृष्टं च तत्परितः पतितैरतितीव्रपाणिकमलकृतावरोधवधूकुचतटाभिघातहारगलितैःकाश्मीरारुणैः मुक्ताफलैरुपशोभित-प्रान्तं सिंहाध्युषितं मत्वा वन्यद्विपैरभग्नं परिहृतं च दूरत एव मृगयूथैस्ततो गृहान्तः प्रविष्टेन मया यथावस्थिता सर्वा सम्पद उपलब्धाः। छत्रचामरादीनि च सर्वाणि राज्योपकरणादीनि नीत्याऽपहृतबलतया भित्तिमवलं व्यवस्थितानि, परस्परमभाषमाणानि प्राणिकुलानीव निर्मनुष्यतयाऽपरिष्कृतगृहावस्थिततया किंचिन्म्लानानि चित्राणि विचित्राणि च।वीर!

यत्प्रत्यर्थिबलं विलोक्य विपुला धूलीः प्रयाणोत्थिता

हित्वा तानि पुराणि धावति भयात् पाथोधिवेलावधि।

संग्रामाध्वनि तत्पुनः प्रथितयोरेकैकमुद्दण्डयो-

र्दृष्ट्वा सख्यममुष्य तिष्ठतु कथं दोर्दण्डकोदण्डयोः ।।१।।

कृत्वा शोणितपारणां भृगुकुलोत्तंसा हतक्षत्रिया-

सृक्पानोत्तरमादृतस्य रुधिरालाभाद् व्रतस्य द्रुतम्।

एतद्दुःसहमार्गणप्रतिहतप्रत्यर्थिदन्तावल-

झुण्ड ने दूर से ही छोड़ दिया, इस प्रकार के घर के अन्दर पहुंचने पर मैंने भली प्रकार अवस्थित सभी सम्पत्तियों को देखा। छत्र चामर आदि सभी राज्योपकरण, नीति से बल के अपहृत हो जाने के कारण दीवाल पर टंगे हुए थे। वे परस्पर बात न करने वाले प्राणियों के समान, मनुष्यों से विहीन होने के कारण असंस्कृत घर में अवस्थित होने से कुछ मुरझाए हुए तथा चित्र विचित्र प्रकार के हो गये थे।वीर!

(वीरभद्र) के प्रयाण से उठी हुई भारी धूल को देखकर शत्रुओं की सेना डर से नगरों को छोड़कर समुद्र की सीमा की ओर भाग रही है। वह संग्राम के पथ पर सर्वथा व्याप्त, अत्यन्त बलशाली भुजाओं तथा धनुष की मित्रता को देखकर कैसे टिकी रह सकती है ।।१।।

रक्त की पारणा करके भृगुकुल के भूषण के द्वारा क्षत्रियों का विनाश करने के पश्चात् पुनः उनके रक्तपान के अनन्तर रुधिर प्राप्त न हो सकने की स्थिति में श्री भैरव अत्यन्त दुःसह उपाय से मारे गये शत्रुओं के हाथियों से निकलती

स्फूर्जद्रक्तधुनीजलासु सगणः श्रीभैरवः खेलति ।।२।।

हेलालब्धचतुर्विधाब्धिविलसद्वेलाः कियन्त्यः पराः
दिक्प्रान्ताचलकन्दरावसतिभिस्सार्धं स्थिता निर्भरम् ।
अन्या वन्यविभूतिभिः सह कृता वासा वनीभूमिषु
श्री लंकेश्वर तस्य वैरिवनिता यस्य स्फुटाः कीर्तयः ।।३।।

एतत्प्रौढतरप्रतापदहनज्वालाकलापारुण-
प्रत्यर्थिक्षितिमण्डलीप्रविपुलप्रावृष्यपि प्रायशः
व्यात्तां चञ्चुपुटीं विशन्ति भुजगास्तीव्रोष्मणा बर्हिणः
कामं केसरिणः सटासु हरिणः स्वैरं समाचामति ।।४।।

वीर! अधुना तु नास्माकं भीतेरवसरः यतः सः ।

पाथोधिवेलावधिभूमि पालसमर्पितानेक कर प्रकारान् ।
आदाय भूमिपति रामचन्द्रनिदेशतः स्वे भवने चकास्ति ।।५।।

याबन्मूर्ध्नि पुरद्विषो विधुकला वेदा मुखे वेधसो

हुई रक्त की नदी की धारा में अपने गणों के साथ खेल रहे हैं ।।२।।

हे श्री लंकेश्वर! जिसकी प्रतिष्ठा सर्वत्र व्याप्त है उस (वीरभद्र) के शत्रुओं की स्त्रियां चारों समुद्र की सीमाओं तक भागती हुई दिशाओं के सीमावर्ती पर्वत की गुफाओं में रहने वाले प्राणियों के साथ तथा अन्य जंगल के जानवरों के साथ रहती हुई वनभूमि में निवास कर रही हैं ।।३।।

इसके अत्यन्त प्रौढ़ प्रताप रूपी अग्नि की लपट के कारण शत्रु राजाओं की मण्डली भरी वर्षा में भी प्रायः बाहर रहती है तथा इसकी अत्यन्त तीव्र गर्मी के कारण सांप इस मोर की खुली हुई चोंच में बैठ जाता है तथा हिरन स्वेच्छा से सिंह की सटा या सिर के बड़े बालों को सहलाने लगता है ।।४।।

वीर! पर अब डर का अवसर नहीं। क्योंकि वह--

अनेक प्रकार के करों को वसूल करके महाराज रामचंद्र के आदेश से अपने भवन मे विराज रहा है ।।५।।

जब तक शंकर के सिर पर चन्द्रमा की कला है। ब्रह्मा जी के मुख में वेद हैं, विष्णु जी के वक्षःस्थल पर लक्ष्मी है, जब तक स्वर्गलोक में स्वर्ग-

लक्ष्मीर्वक्षसि शार्ङ्गिणः सुरधुनी यावच्च देवालये ।
तावद् विश्रुतवीरभद्रनृपतेः कीर्तिं सुधासोदरीं
ग्रन्थोऽसौ प्रकटीकरोतु जगति ख्यातो गुणैः केवलैः । ।६ । ।

युगरामर्तुशशांके वर्षे चैत्रे सिते प्रथमे
श्रीवीरभद्रचम्पूःपूर्णाभूच्छ्रेयसे विदुषाम् । ।७ । ।

स्वस्ति प्रत्यर्थिसार्थकदर्थनापाटवप्रख्यातप्रतापानलसन्तप्तत द्वधूनिवहातितप्तनिःश्वासद्रुतहिमाचलतुषारभारसंगसंवर्धितगंगाजलप्रांजलमरालविशालधवलीभवदखिलदिगन्तरालसौन्दर्यजितमनोभ वौदार्यपराभूतकर्णगाम्भीर्यनिर्जितजलधिस्थैर्यस्मारितसुवर्णाचलभूमण्डलाखण्डलबघेल वंशावतंस महाराजाधिराजश्रीरामचन्द्रदेवात्मजयशोदाऽन्यूनश्रीयशोदागर्भसम्भवयुवराजश्रीवीर भद्रदेवचरिते मिश्र श्री बलभद्रात्मज विजयश्री गर्भसम्भव सकलशास्त्रारविन्द प्रद्योतन भट्टाचार्य श्री पद्मनाभविरचिते सप्तम उच्छ्वासः समाप्तः । समाप्तोऽयं वीरचम्पूनामाग्रन्थः ।

नदी गंगा है तब तक केवल अपने गुणों से ख्याति को प्राप्ति होने वाले प्रसिद्ध वीरभद्र राजा की अमृत सदृश कीर्ति को यह ग्रन्थ प्रकट करता रहे । ।६ । ।

युग अर्थात् ४, राम अर्थात् ३ ऋतु अर्थात् ६, शशांक चन्द्र अर्थात् १ (इन संख्याओं को 'अकानां वामतो गतिः' के नियम के अनुसार उलटकर पढ़ना चाहिए)। इस प्रकार संवत् १६३४ वर्ष में, चैत्र मास में, शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन यह वीरभद्रदेव चम्पू विद्वानों के कल्याण के लिए पूर्ण हुआ । ।७ । ।

शत्रुओं के समूह के विनाश की पटुता में प्रख्यात जो प्रताप रूपी अग्नि, उसमें जलती हुई जो (उन शत्रुओं की) स्त्रियों का समूह, उनकी जो अत्यन्त गर्म सांसें, उनसे पिघलने वाली जो हिमालय की बरफ, उससे बढ़ा हुआ जो गंगा जल, उसके अतिविशुद्ध, विशाल जलराशि से पवित्र होने वाली संपूर्ण दिशाएँ, उनके सौन्दर्य को धारण करके कामदेव को भी जीत लेने वाले, अपनी उदारता से कर्ण को भी हरा देने वाले, अपनी गम्भीरता से समुद्र को भी जीत लेने वाले, अपनी स्थिरता अथवा धैर्य से सुवर्ण पर्वत सुमेरु की याद करा देने वाले, सम्पूर्ण भूमण्डल में बघेल वंश के भूषण महाराजाधिराज श्री रामचन्द्रदेव के पुत्र, यश प्रदान करने में जरा भी कम न रहने वाली यशोदा के

वि. सं. १६६१ श्रावण शुक्ला १३ बुधवासरे श्री मेद पाटान्तर्गतोदयपुरनगरे यावदार्यकुलकमलदिवाकर श्रीमन्महाराधिराज महाराणा जी श्री भूपाल सिंह जी विजय राज्ये राजकीय श्री सरस्वती भण्डार कार्यालये दधिवाडिया चारण करणीदानस्याध्यक्षतायां पल्लीवालज्ञातीय नन्दकिशोरशर्मणा लिखितमिदं पुस्तकं प्राचीन-पुस्तकानुसारेण। शुभम्।।

❑

गर्भ से उत्पन्न युवराज श्री वीरभद्रदेव चरित में श्री बलभद्र मिश्र के पुत्र, विजयश्री के गर्भ से उत्पन्न सकलशास्त्रारविन्द प्रद्योतन भट्टाचार्य श्री पद्मनाभ विरचित सप्तम उच्छ्वास समाप्त हुआ। यह 'वीर चम्पू' नामक ग्रन्थ भी समाप्त हुआ।

विक्रमी संवत् १६६१ श्रावण मास शुक्ल पक्ष की १३ तिथि बुधवार को श्री मेदपाट के अन्तर्गत उदयपुर नगर में आर्यकुल कमल के सूर्य श्री महाराजाधिराज महाराणा जी श्री भूपाल सिंह जी के विजय राज्य में राजकीय श्री सरस्वती भण्डार के कार्यालय में दधिवाडिया चारण गोत्र वाले करणीदान की अध्यक्षता में पल्लीवाल जाति वाले नन्दकिशोर शर्मा द्वारा यह पुस्तक प्राचीन पुस्तक के अनुसार लिखी गई।।शुभ।।
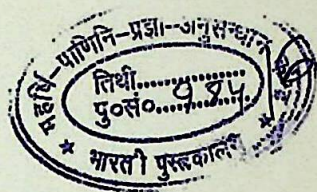
वेद वाणी वितानम् के अन्य

१. **जगन्नाथ-शतक—** श्रीमन्महाराज रघुराज सिंह जूदेव विर
काव्य ग्रन्थ। डॉ. सुद्युम्न आचार्य की व्याख्या, भाषा
सहित। म. प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा पुरस्कृत।

२. **जगदीश-शतकम्—** श्रीमन्महाराज रघुराज सिंह जूदेव
का प्रथम बार प्रकाशन। साथ ही महाविद्वान् पं. रंगाचार्य
प्राचीन संस्कृत टीका तथा डॉ. सुद्युम्न आचार्य की सुक्षेमा

मूल्य १ १/

३. **वीरभानूदयकाव्यम्—** महाकवि माधव उरव्य विरचित बघेलखण्ड के इतिहास-काव्य विषयक सर्वथा दुर्लभग्रन्थरत्न का प्रकाशन इसमें डॉ. सुद्युम्न आचार्य द्वारा प्रथम बार हिन्दी संस्कृत व्याख्या के साथ सुसज्जित किया गया है। *मूल्य १२०/- रु. मात्र*

निम्न सभी पुस्तकों के लेखक— डॉ. सुद्युम्न आचार्य

४. **संस्कृत काव्यों के आधार पर बघेलखण्ड का इतिहास—** इसमें विभिन्न संस्कृत काव्यों के आधार पर बघेलखण्ड का लगभग ४५० वर्षों का क्रमबद्ध इतिहास वर्णित है। साथ ही इंग्लिश तथा मुस्लिम इतिहासकारों के साथ तुलना के द्वारा इसे प्रामाणिक बनाया गया है। इतिहास में रुचि रखने वालों के लिये यह ग्रन्थ अनिवार्य है।
मूल्य १२/- रु. मात्र

५. **अधिविज्ञानं दर्शनशास्त्रम्—** भाषा संस्कृत। यह भारतीय दर्शनशास्त्र तथा आधुनिक भौतिक विज्ञान विषय पर तुलनात्मक, समीक्षात्मक अपने विषय का अनूठा पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है। यथा स्थान चित्रों, चार्टों का भी उपयोग है।
मूल्य ९०/- रु. मात्र

६. **रोचन्तां शब्दभूमयः—** भाषा-संस्कृत, इंग्लिश। उ. प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत। इसमें संस्कृत, हिन्दी शब्दों तथा उनकी व्युत्पत्तियों पर आधारित अतिरोचक निबन्धों का संग्रह है। *मूल्य ४०/- रु. मात्र*

७. **राजन्तां दर्शनांशवः—** भाषा-संस्कृत, हिन्दी। उ. प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत। इसमें भारतीय दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान विषय पर आधारित अतिरोचक निबन्धों का संग्रह है। *मूल्य ५०/- रु. मात्र*

८. **The glory of the Vedas**
इसमें वेदों की प्रासंगिकता तथा इनकी बहुमूल्य विशेषताओं का अतिरोचक निबन्धों के अन्तर्गत वर्णन है। *मूल्य ८/- रु. मात्र*